"प्रेम की मीठी नज़र मिटे द्वेष का ज़हर"

-: लेखक :-

वर्धमान तपोनिधि संघहितचिन्तक स्व. गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्य
भगवंत **श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज** के शिष्यरत्न
साधुसेवातत्पर, स्वाध्यायप्रेमी स्व. पूज्यपाद मुनिराज
श्री देवसुन्दरविजयजी महाराज के शिष्यरत्न पूज्यपाद
आचार्य भगवंत **श्रीमद् विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज**

११६

प्रकाशक

रत्नत्रयी ट्रस्ट

कल्पेश वि. शाह

१४, इलोरापार्क सोसायटी,
नारणपुरा चार रस्ता के पास, देरासर के सामने,
नारणपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१३
फोन : ७४१७७४६, ७५४०२९७
(दोपहर : १२ से ६)

प्राप्तिस्थान

१. रत्नत्रयी ट्रस्ट
प्रवीणकुमार दोशी
२५८, गांधी गली स्वदेशी मार्केट,
कालबादेवी रोड
मुंबई - ४०० ००२
फोन २०६०८२६
(दुपहर मे १२ से ७)

२. श्रीमान नीतिन दुगड
C/o. जी.सी.एन. शेर ब्रोकर्स लि
१९६८, शीश महल, किनारी बाजार,
दील्ली - ११० ००६
फोन ३२७११४५, ३२६३५२३
३२५५४५६, ३२५५४५९

3. भरत - हरेश
C/o नेशनल मेडिकल स्टोर्स,
[illegible] ऑफिस के सामने
आकोला - ४४४ ००१
(विदर्भ) महाराष्ट्र

4 **Jayantilal R Rathod**
K K Electricals
21, Reddy Raman Street,
Chennai - 600 079 (T N)
Ph (R) 5214624 (O) 5357500

५. रत्नत्रयी ट्रस्ट
कीर्ति दोशी
[illegible]
[illegible]
गेट रोड, सूरत.
फोन [illegible]

6 **Ashok Sanghvi**
C/o Hira Text[illegible]
Amba Cloth Market [illegible]
70, D K Lane Chickpet
Bangalore - 560 053
Ph (O) 2261621

७. नरेन्द्रकुमार सुराना
सुराना [illegible]
[illegible]
उज्जैन - ४५६ ०१० (M P)
फोन [illegible]

८. दिनेशभाई भणसाली
[illegible]
[illegible]
कलकत्ता - ७०० ००१
फोन [illegible]

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम आवृत्ति प्रति : ३०००
द्वितीय आवृत्ति प्रति : ३०००
तृतीय आवृत्ति प्रति : ३०००
दिनांक : [redacted]
मूल्य : ४०.००

मुद्रक
शार्प ऑफसेट प्रिन्टर्स
[illegible]
[illegible]
फोन [illegible]
[illegible]
[illegible]

द्वेष भयंकर है, प्रेम भद्रंकर है

पॉव में कांटा चुभने पर भी चलना शायद आसान है,
परन्तु प्रसन्नतापूर्वक चलना तो करीब-करीब असंभव ही है;
ऑख मे तिनका गिरने पर भी देख पाना आसान हो सकता है,
परन्तु अत्यन्त स्पष्ट व स्वच्छ दर्शन तो
करीब-करीब असभव ही है।
ठीक इसी तरह,
हृदय में व्यक्तियों के प्रति कडवाहट रखकर, व्यक्तियों
के प्रति द्वेष की प्रतिष्ठा करके जीना भी शायद आसान हो,
परन्तु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जीना तो करीब-करीव
असंभव ही है। इस पुस्तक में शायद 'पुत्रवधू' को
केन्द्र में रखकर बात की गयी है, परन्तु वास्तव में तो
इस दुनिया के प्रत्येक छद्मस्थ को यह समस्या सता रही है।
द्वेष के साथ जीने में प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया जा
सकता, फिर भी द्वेष के सामने जंग छेडने की हिम्मत अन्दर पैदा
नही होती।
परन्तु
अनन्त ज्ञानियों के वचन के आधार पर
इस पुस्तक में द्वेष की भयंकरता व प्रेम की भद्रंकरता
समझाने का मैंने छोटा-सा प्रयास किया है।
इस पुस्तक के वाचन द्वारा यदि एक भी आत्मा इस
भयकरता व भद्रकरता को समझकर अपने जीवन को
द्वेषमुक्त व प्रेमयुक्त बनाने के लिए कटिवद्ध हो जाएगी,
तो मेरा यह लेखन का प्रयास सार्थक समझुंगा।
इस पुस्तक में श्री जिनाज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो,
तो उसके लिए अन्तर से मिच्छा मि दुक्कडम्. .

- आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरि

इस पुस्तक के लेखन का कारण : वेदना

'महाराज साहेब! पुत्र पर माता-पिता द्वारा किये गये उपकारों को हृदयस्पर्शी भाषा में समझानेवाली, आपके हाथों लिखी पुस्तक 'दो कदम विस्मरण से स्मरण की ओर' (गुजराती . लखी राखो आरसनी तक्ती पर) पढी। ढेर-सारी गलतफहमियों का शिकार बना हुआ मेरा मन इन गलतफहमियों से मुक्त बना। मम्मी-पप्पा के प्रति आन्तरिक सद्‌भाव वढा व उनकी भक्ति करने के मनोरथ जागे। उनके प्रति मेरे व्यवहार में सहृदयता आ गयी, परन्तु

मुश्किली इस बात की है कि मेरी पत्नी का मेरे मम्मी-पप्पा के साथ कोई मेल ही नहीं। मैंने उसे यह पुस्तक पढ़ने की सलाह दी, तो उसने साफ इन्कार कर दिया। उसका यही कहना है कि 'आपको मम्मी के साथ इतना प्रेम था, तो मेरे साथ शादी ही क्यों की?'

ऐसे क्षुद्र मानस का मुझे कोई इलाज नजर नहीं आता। क्या बताऊँ आपको? मैं आपसे मिलने यहाँ आया हूँ, तो इसके लिए भी मुझे झूठ बोलना पडा है कि मैं व्यवसाय के काम से बाहर जा रहा हूँ।

सिर्फ मेरी ही नहीं, मुझ जैसे सैकडों युवकों की यही स्थिति है। हमें चाहे धर्म करने की इच्छा हो या व्यवहार संभालना हो, पत्नी को नाराज करके हम कुछ नहीं कर सकते। मम्मी-पप्पा को संभालने के मामले में भी हमें उसका ही निर्णय सर पर चढाना पडता है, तो बच्चों को संस्कार देने के मामले में भी हमें उसका ही निर्णय मानना पडता है।

आपसे हमारी यही विनती है कि घर में आए दिन चलनेवाले क्लेश से व मन में सतत चलनेवाले संक्लेश से हम सबको मुक्त करने के लिए, प्रसन्नतापूर्वक मम्मी-पप्पा की सेवा-भक्ति करने में हमें तत्पर बनाने के लिए, हमें प्रभुशासन की उपासना में जोडने के लिए, बच्चों में सुसंस्कारों का आधान करने में प्रयत्नशील बनाने के लिए व हमें प्राप्त श्रेष्ट मानवभव को सार्थक बनाने की दिशा में बढाने के लिए एक पुस्तक पुत्रवधू को लक्ष्य में रखकर लिखने की कृपा कीजिये।

यदि उसके मन का परिवर्तन हुआ, तो सारे कुटुंब में प्रसन्नता का वातावरण बना ही समझिये। हम लोग बाहर चाहे जितनी बहादुरी क्यों न दिखाते हों, पत्नी के

आगे तो हमारी हालत सचमुच बेकार है। अब आप ही हमें बचाईये।'

करीब पॉच माह पहले विहार करते हुए एक गॉव में पहुँचा। वहॉ के एक युवक के मुख से ये शब्द सुनकर में स्तब्ध हो गया। उस युवक के जाने के बाद मेंने शान्ति से उसकी विनती पर विचार किया। उसकी बात कुछ अशों में वजनदार भी लगी, परन्तु कठिनाई यह थी कि केन्द्रस्थान में 'पुत्रवधू' को रखकर लिखुं कैसे?

जीवन के १९ वें वर्ष में पूज्यपाद गुरु देवश्री की कृपा से प्रभुशासन का सयम जीवन मेरे हाथ में आया। संसार का या संसार के व्यवहार का कोई अनुभव नहीं और सासु-बहू के बीच क्या समस्यायें हो सकती हैं, इसकी कोई स्पष्ट समझ नहीं। संयुक्त कुटुंब में बहू की क्या जवाबदारी हो सकती है, इसका कोई स्पष्ट ख्याल नहीं। यह थी मेरे मन की उलझन।

फिर भी युवकों की समाधि टिकाने के लिये, परिवार की प्रसन्नता बनाये रखने के लिए, क्लेश व सक्लेश से त्रस्त व समस्त जीवन को तबाह कर बेठनेवाले सैकडों कुटुबों को इस कष्ट से छुटकारा दिलाने के लिये मैंने इस विषय पर लेखनी चलाने की हिम्मत की।

हॉ, हो सकता है कि 'पुत्रवधू' के दिल को या उसकी समस्या समझने में मे शायद पूर्णत सही न होऊँ, शायद उसकी व्यथा या वेदना को वाचा देने में मैं पूर्णत सफल न हुआ होऊँ, फिर भी मैंने हो सके उतना सतुलन रखकर इस पुस्तक के लेखन का प्रयास किया है।

आशा रखता हूँ कि सब समाधि में मग्न बन जायें व प्रसन्नता से झूमने लग जायें। इस उत्तम कोटि के मानवभव को क्षुद्र बातों का प्राधान्य देकर बरबाद करने से रुक जायें। 'यदि एक पुरुष सुधरता है, तो उसके अकेले का ही जीवन सुधरता है, परन्तु स्त्री सुधरती है, तो अनेकों के जीवन को सुधारने में वह निमित्त बनती हे।' इस उक्ति को सही अर्थ में चरितार्थ करने के लिए पुत्रवधृ कटिबद्ध बन जाय। वह सुशील पत्नी बन जाय, वात्सल्यमयी मम्मी बन जाय, प्रेममयी सासु बन जाय, प्रभुशासन की उत्तम कोटि की श्राविका बन जाय और आगे चलकर सर्वपापमुक्त सर्वविरति जीवन स्वीकार करके उत्तम साध्वीजी बन जाय। एकमात्र इसी उद्देश्य से लिखी गयी इस पुस्तक को इसी तरह से पढने की राय पाठकों को खास देता हूँ।

- आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरि

'लखी राखो आरसनी तकती पर'

इस पुस्तक के बारे में 'मुंबई समाचार' के ३-१-९९, रविवार के संपादकीय लेख में

श्री जेहान दारुवाला द्वारा की गयी समीक्षा

भारतीय संस्कृति में कुटुंब व्यवस्था का बहुत महत्त्व है। उसमें भी सारे कुटुंब में माता-पिता का स्थान अनन्य है। अधिकतर भारतीय नागरिकों के कुटुंब जिस घर में रहते हैं, उसके एक कमरे में पति-पत्नी, दोनों के माता-पिताओं की तस्वीरें अवश्य होती हैं।

पुत्र-पुत्री के जीवन-निर्माण, शिक्षण, संस्कार व वे जब तक नौकरी या व्यवसाय में न लगे, तब तक सामान्य कुटुंब के माता-पिता जो खर्च करते हैं, उसकी कीमत पैसों के माध्यम से आंकी नहीं जा सकती। उन्होंने कितने बलिदान दिये, व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का त्याग किया, ठंडी, धूप सब कुछ सहन किया, उसकी क्या बात करें?

ऐसे माता-पिता का युवा पीढ़ी के साथ कार्यपद्धति में मतभेद, भिन्नता अथवा विचारधारा में भिन्नता के कारण वृद्धाश्रम में रखने की घटनायें जब हम सुनते हैं, तब प्रश्न खड़ा उठता है कि क्या यह वही आर्य संस्कृति है जहाँ श्रवण ने अंध माता-पिता को कंधे पर कांवड़ में लेकर पवित्र धामों की यात्रा करायी थी?

अपवादरूप स्थानों में या विशिष्ट संयोगों में वृद्धाश्रम हो, तो बात और है, परन्तु नगर-नगर पर वृद्धाश्रम शुरू हो जायें इस सामाजिक समस्या का कोई उपाय नहीं। वृद्धाश्रम तो धोंपड़े मारने जैसी बात है। इसमें बेमन से प्रोत्साहन देना चाहिये।

माता-पिता दुष्प्रतिकार्य हैं। उनके उपकार का बदला चुका पाना संभव नहीं। ऐसी ही कुछ बातों को केन्द्र में रखकर आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज द्वारा 'लखी राखो आरसनी तकती पर' नामक विश्लेषणात्मक पुस्तक लिखी गयी है।

आज युवा पीढ़ी की एक ही दलील है कि हमें हमारे ढंग से जीने दीजिये। शादी के बाद अलग रहने की मनोवृत्ति प्रत्येक समाज में बढ़ती जा रही है। इसीलिये तो [illegible] के बदले ही सिगरेट, फिल्म व फ्लैट मांगने लग गया है।

जो युवक २०-२५ वर्ष तक माता-पिता की हर बात मानता था, उनको [illegible] निर्णय तक [illegible] लिया था, वही युवक व्यवसायिक

अथवा आर्थिक स्वतन्त्रता मिलने पर बडों की छत्रछाया से दूर होता जाता है।

इस एक ही बात से समाज में हजारों कुटुबो में माता-पिता व नयी पीढी के बीच फासला बढने की शुरू आत होती है। आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज ने प्रेम व प्रार्यश्चित. . इन दो बातों द्वारा नयी पीढी को माता-पिता के समीप जाने के लिए जो भूमिका बाधी है, वह पूरी पुस्तक पढने से समझी जा सकती है।

कोई गलती हुई हो या न भी हुई हो, परन्तु युवा पीढी यदि एक वार अन्त करण से नये प्रकरण की शुरू आत करेगी, तो वह आवाज बुद्धि की नहीं, परन्तु अन्तर की होगी। उसमें अह नही, परन्तु समर्पण होगा।

जन्मदात्री-सस्कारदात्री माता व जीवन निर्माण के शिल्पी पिता के पास माफी मागने से युवक नीचे नही उतरेगा, परन्तु महान या उच्च कक्षा की पगडडी पर जा सकेगा। माफी मागने से व्यक्ति हमेशा महान ही बनता है।

माता-पिता को अलग करने का व उन्हें वृद्धाश्रम में भेजने का रूख उचित नहीं। ऐसी प्रेरणाप्रद पुस्तक पढ़ने के बाद युवा वर्ग अपने वयस्क माता-पिता का ठीक से ध्यान रखने लगेगा, उन्हें संभालने लगेगा, उन्होंने दवाई-दूध लिया या नहीं, इसका ध्यान रखने लगेगा, इसमें कोई शंका नहीं।

कामधंधे व व्यवसाय पर ध्यान दिया जाता है, टी वी या सिनेमा के लिए वक्त निकाला जाता है, तो सिर्फ १० मिनिट शारीरीक रू प से कमजोर बने हुए, जीवन-सध्या के वक्त थकान महसूस करनेवाले माता-पिता के लिए नहीं निकाली जा सकती?

कई माता-पिताओं की फरियाद है कि पुत्र अच्छा है, विनयी है, परन्तु पुत्रवधू गलत राह पर उसे खींच ले जाती है। इस समस्या का समाधान एक ही है हृदयपरिवर्तन। स्वयं भी एक दिन जब बूढा होगा, तब आज की पीढी उसके साथ यदि ऐसा ही वर्तांव करेगी तो? बस, इतना विचार यदि वह करने लग जाये, तो फिर देखिये मन व हृदय का परिवर्तन!

रत्नत्रयी ट्रस्ट की इस प्रकार की चिन्तनात्मक पुस्तकें समाज के घर-घर में पेदा होनेवाली समस्या के लिए मार्गदर्शक बनती हैं व ठोस उपाय वताती हें, इसमें कोई शंका नहीं।

'झेर ज्यारे नीतरी जाय छे'

इस पुस्तक के बारे में 'मुंबई समाचार' के दि. २३-५-९९, रविवार के संपादकीय लेख में श्री जेहान दारु वाला द्वारा की गयी समीक्षा

कुटुंव व्यवस्था में स्त्री केन्द्रस्थान में है। यदि पुरुप सुधरे, तो उसका अकेले का जीवन सुधरता हे, परन्तु स्त्री सुधरे, तो अनेकों के जीवन में परिवर्तन आ जाता है। वह सुशील पत्नी वन जाती है, वात्सल्यमूर्ति माता या प्रेममयी सासु वन जाती है।

कुटुंवप्रथा को धक्का पहुँच रहा है और विभक्त कुटुवों का प्रमाण वढता जा रहा है। संस्कारी परिवारों में भी सासु-वहू के वीच मतभेद वढते जा रहे हे। दो पीढियों के बीच अंतर खूव ही वढ रहा हे। यह वात विल्कुल अच्छी नहीं।

पढी-लिखी बहुयें जव ससुराल में आती हे, तव उन्हें उस कुटुंव की प्रणालिका व परंपरा का अनुसरण करना पडता हे। सासु द्वारा वहुओं पर कई प्रकार के नियंत्रण रखे जाते हैं, जो उन्हें पसन्द नहीं आते। 'तुझसे ऐसा नही हो सकता ऐसा नही वोला जा सकता...' यह सब शुरू हो जाता है।

'देर रात तक वाहर घूमने नहीं जाया जा सकता, होटल में जाना हमारे कुटुंव की प्रथा नहीं'-ऐसी ही वातों में से सासु-वहू के वीच मतभेद की शुरू आत होती हे। युवा पीढी का कहना है कि नियंत्रण रखने से ही विचारभेद की शुरू आत होती है।

परन्तु गलती यहीं पर होती हे। ट्राफिक को नियंत्रण में रखने के लिये रेड सिग्नल है, उसी प्रकार युवा पीढी गलती न करे, इसके लिये नियंत्रण हे और किसी भी सासु को कडवा-अप्रिय वनकर भी ऐसे नियंत्रण लादने ही पडते हैं।

'झेर ज्यारे नीतरी जाय छे' नामक पुस्तक में आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज साहेव ने सासु-वहू के वीच के संवंध, उसकी भूमिका व ये संबंध विगडे नहीं, इसके लिये इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है कि यह पुस्तक प्रत्येक संयुक्त कुटुंव में रखने योग्य हे। रत्नत्रयी ट्रस्ट ने इसका प्रकाशन किया है।

आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज साहेब ने इसमें वताया है कि निषेध व नियंत्रण के विना भला सलामती संभव है? कलेक्टर वनने की इच्छा रखनेवाला पुत्र, गुंडों के साथ दोस्ती न करने के पिता के निषेध की परवाह न करे, तो क्या हो? परीक्षा में प्रथम स्थान जिसे पाना हो, वह विद्यार्थी शिक्षक के मना करने

पर भी टी वी ही देखता रहे तो?

क्रिकेट मेच जीतने की इच्छा रखनेवाला केप्टन शराब न पीने के कोच के नियत्रण की मजाक उडाकर पीने की शुरू आत करे तो? दही न खाने की डॉक्टर की सूचना का मरीज द्वारा भग हो, तो? इन सबमें नुकसान किसको? इसका जवाब यही हे कि जो भंग करता हे, उसे ही नुकसान होनेवाला हे।

मन की दुनिया में कोई बडा से बडा कारागृह हो, तो वह है गलत धारणा का। अधिकतर विवाद परस्पर झूठे पूर्वग्रह व मन की कल्पना से ही खडे होते हैं। इसका मुख्य कारण हे - सहनशक्ति का अभाव। बडे-बुजुर्ग कुछ कहते हों, तो उसमें सामनेवाले पक्ष की कुछ न कुछ भलाई होती है।

प्रत्येक सासु बहू थी व प्रत्येक बहू सासु बननेवाली है। जो बात आज एक पक्ष को लागु पड़ रही है, वही बात कल दूसरे पक्ष को भी लागु पड सकती है। ऐसे संयोगों में भूल जाने की भावना भी रखनी चाहिये।

स्त्री तो सहनशीलता की मूर्ति कहलाती है, तो फिर एक स्त्री दूसरी स्त्री के प्रति उदारता क्यों नहीं रख सकती? खुद की जवान लडकी पजाबी ड्रेस पहने, तो चलता हे, किन्तु नवपरिणीत पुत्रवधू पजाबी ड्रेस पहने, तो सासु को क्यों बुरा लगता हे?

फिर से बात सम्यक् ष्टि की आती है। किसी भी सासु की ष्टि बदल जाय, तो विवाद या मतभेदों का कारण ही न रहे। गुजराती भाषा में कहावत है कि झगडे से मटके का पानी सूख जाता है। छोटी-छोटी बातों में विवाद करना दोनों पक्षों को छोड देना चाहिये।

किसी त्यौहार में अपनी बहू की मनपसन्द चीज उसे भेंट देकर सासु द्वारा बिगडे हुए सबध सुधारने की शुरू आत होगी, तो नये प्रकरण की शुरू आत होगी। अलमारी की चाबी किसीको मिले या न मिले, परन्तु सबके दिल जीत लेने की चाबी ही सच्चा प्रेम है।

'सासु कर्कश है, निदाखोर हे, शकाशील हे, उसकी जीभ कडवी है' ऐसा कहकर बहू को सासु की निन्दा करनी उचित नही। ऐसा करने से वह अपने पति की माता व स्वय जिस परिवार से जुडी हुई है, उसकी टीका में भागीदार बनती हे, यह बात वह क्यों भूल जाती है? यदि झाडू कीचडवाला हो, तो उससे घर साफ नहीं होता। इसी प्रकार यदि मन बिगडा हुआ हो, तो घर कभी स्वर्ग नहीं बनता। इतनी बात सबको समझने की आवश्यकता हे।

हिन्दीभाषी वाचकों के लिये खुशखबर

न्यायविशारद, वर्धमान तपोनिधि परम पूज्य आचार्यदेवश्री **भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.** के पशिष्य सरस्वतीलब्धप्रसाद, सुविख्यात प्रवचनकार परम पूज्य आचार्यदेव **श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा** ने प्रवचन व लेखनी के माध्यम से भौतिकता की चकाचौंध मे गुमराह बने हजारो लोगो को आदर्श जीवन जीने की राह बतायी है । रत्नत्रयी ट्रस्ट ने पूज्यश्री द्वारा लिखित **१२६ पुस्तकें** गुजराती भाषा मे प्रकाशित की है । नैतिकता, आचार-सपन्नता, जीवन शुद्धि, हदय की उदारता, प्रेम के पथ पर ले जानेवाले उनके साहित्य से समाज बहुत लाभान्वित हुआ है ।

पूज्यश्री की

लेखनी व प्रवचनो की ताकत से बंबई, सूरत, अहमदाबाद आदि क्षेत्रो की जनता तो परिचित है ही । हिन्दीभाषी पाठक भी पूज्यश्री की इस ज्ञान-समृद्धिसे लाभान्वित हो, इस हेतु से रत्नत्रयी ट्रस्ट ने हिन्दी भाषा मे भी पूज्यश्री का साहित्य प्रकाशित करने की योजना बनायी है । पूज्यश्री की तीन पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद प्रकाशित हो चुका है । अब अन्य पुस्तके भी हिन्दी भाषा मे प्रकाशित होंगी । एक-एक पुस्तक भी आपके लिये एक अनमोल नजराना सिद्ध होगी । आप भी इस योजना का लाभ लेकर घर-बैठे पूज्यश्री की हिन्दी पुस्तक प्राप्त कर सकेंगे ।

योजना की रूपरेखा इस प्रकार है। रू. १०००/ भरकर इस योजना के सदस्य बन जाईये । प्रति वर्ष आपको ट्रष्ट की ओर से प्रकाशित पुस्तकें प्राप्त होंगी । यह योजना तीन साल के लिए है । आजीवन सदस्यता की योजना का विचार बाद में किया जाएगा ।

श्रद्धा,



दर्शन कल मेरे पास करीब
तीन घंटे बैठकर गया।
उसका हताश चेहरा,
उसकी आँखों के आँसू,
उसके चेहरे के हाव-भाव,
उसके शब्दों में छलकती दीनता,
उसके मन में घर कर गयी निराशा,
उसका भयग्रस्त बना हुआ चित्त
तथा उसका उतरा हुआ शरीर,
यह सब देखकर में स्तब्ध हो गया। मुझे ऐसा लगता है
कि सही वक्त पर तुम्हें सम्यक् मार्गदर्शन देकर मे
सावधान नहीं करुंगा, तो शायद हमेशा के लिए माथे पर से
सोभाग्य का प्रतीक विदी मिटाने का दिन तुम्हें देखना पडेगा।
दर्शन ने मुझे अपने जीवन की जो आपवीती वतायी,
उससे में ऐसा समझा हूँ कि
तुम्हें अब एक दिन भी संयुक्त कुटुब में रहने की इच्छा नहीं।
इसमें भी उसकी मम्मी के साथ अर्थात् अपनी सासु के
साथ तो तुम्हें एक मिनिट भी रहने की इच्छा नहीं।
तुमने दर्शन से स्पष्ट कह दिया है कि
'आपको मम्मी ही अच्छी लगती थी
तो मेरे साथ शादी ही क्यों की?-
परन्तु आपने मेरे साथ शादी कर ही ली है,
तो अब मम्मी को साथ रखने की कोई जरूरत नहीं।
इस घर में या तो मम्मी रहेगी या फिर में।
आपको जो निर्णय करना हो, मुझे दो दिन में वता दीजिये।'
श्रद्धा,
मे तुम्हें पहचानता हूँ।
तुम्हारा लालन - पालन एक सस्कारी परिवार में हुआ ह।

'मैं शादी करूँगी, तो धार्मिक परिवार में ही करूँगी और वह
भी संयुक्त कुटुंब होना चाहिए।'
शादी से पहले तुम्हारी इस दृढता का मुझे पता हे।
तुम बरसों से साधु-साध्वीजी भगवंतों के परिचय में हो।
इसीलिए दर्शन को कडक शब्दों में तुम्हारे द्वारा दी गयी चेतावनी के पीछे
तुम्हें कैसी वेदना होती होगी, यह मैं जान सकता हूँ।
मैं चाहता हूँ कि पत्रव्यवहार के माध्यम से
तुम अपनी वेदना मेरे पास व्यक्त करो।
मैं चाहता हूँ तुम्हारी समाधि,
मैं चाहता हूँ तुम्हारी प्रसन्नता,
मैं चाहता हूँ तुम्हारी स्वस्थता।
मेरे संयम जीवन की मर्यादा में रहकर मे तुम्हें इसके लिये
मार्गदर्शन देना चाहता हूँ।
हॉ,
एक बात खास समझ रखना कि
संसारी लोग जिस 'सुख' के पीछे अति उत्तम मानव जीवन की
अति मूल्यवान पलों को रद्दी के दाम पर
गॅवा रहे हैं, उस 'सुख' को सलामत रखने का
एक भी उपाय जानने की अपेक्षा तुम मुझसे मत रखना।
क्योंकि 'सुख' का यह प्रकाश, वास्तव में प्रकाश नहीं,
परन्तु शोला है। इस सुख में लगनेवाली दीवाली
वास्तव में दीवाली नहीं, परन्तु होली है।
में तो समाधि का इच्छुक हूँ,
में तो सदगुणों को प्रगट करने का अभिलाषी हूँ,
में तो सद्गति के एकमात्र कारणभूत सद्बुद्धि का हिमायती हूँ।
तुम्हें जो आक्रोश व्यक्त करना हो, खुशी से करना।
दर्द दूर करके डॉक्टर मरीज को तंदुरस्ती देने के प्रयत्न करता है,
में भी तुम्हारे मन के संक्लेश दूर करके समाधि देने के
हो सके उतने प्रयत्न अवश्य करूँगा।

महाराज साहेब,



आपका पत्र मिला।
इस पत्र में लिखे गये शब्दों के पीछे आपके दिल में
बहती हुई प्रेम की गगा देखकर मैं रो पडी।
कई वर्षो के बाद मुझे ऐसा लगा कि
मुझे एक सच्चा विश्रामस्थल मिल रहा है।
मुझे एक सच्चा स्नेहस्थल मिल रहा है।
मुझे एक सच्चा मार्गदर्शनस्थल मिल रहा है।
मैं आपको मेरी वेदना की एक-एक बात लिखुँगी।
एक जीवंत इन्सान के साथ खिलौने जैसा बर्ताव करके
उसके अरमानों को चूर-चूर करनेवाले मेरे परिवार के
सदस्यों की दयनीय दास्ताँ मैं आपके समक्ष पेश करुँगी।
सहनशीलता की मूर्ति बनने के लिए तैयार हुई एक स्त्री को
पत्थर जैसे हृदय का प्रतिनिधित्व करनेवाली बनाने का
दुर्भाग्य बख्शनेवाले मेरे परिवार के सदस्यों के उपेक्षापूर्ण
व्यवहार की बात मैं आपको लिखूँगी।
उसके बाद आप मुझे जो सजा देंगे, वह मैं हँसते हुए सह लूँगी।
परन्तु एक बात मैं आपसे खास कहना चाहुँगी कि
आप मुझे बोलने दीजियेगा, मेरा आक्रोश व्यक्त करने दीजियेगा ;
मुझे हकीकत बताने दीजियेगा। क्योंकि
इस दुनिया का मेरा अनुभव ऐसा हे कि
यहाँ पर कॉटें फूलों को बोलने का
अवसर दिए बिना सीधे ही बींध देते हैं।
यहाँ पर बिल्लियाँ कबूतर की जुबान खुलने से
पहले उसे आहत ही कर देती हैं।
यहॉ पर पत्थर में से प्रगट होने के प्रयत्न करते हुए
झरने के पानी को सागर का पानी
हमला करके प्रगट होने का अवसर ही नहीं देता।
आप मेरे इस आक्रोश को समझ पाये होंगे।

मेरी आन्तरव्यथा को आप कुछ अंशों में जान पाये होंगे।
मेरे हृदय की पीडा मेरे शब्दों में आप देख पाये होंगे।
फुटबॉल को 'किक' मारने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु जब
फुटबॉल फट जाय इस हद तक उसे 'किक' मारी जाती है,
तब फुटबॉल के लिए बलवा पुकारने के सिवाय
और कोई चारा नहीं रहता।
महाराज साहेब,
मेरी मांग हक की है।
'जैसे के साथ तैसे' की नीति मैं आज से नहीं, बरसों से
मानती चली आयी हूँ। मुझे जिसने प्रेम दिया हैं, उसके प्रति
मैंने कभी द्वेष नहीं रखा।
मुझ पर जिसने वात्सल्य के आँसू बहाये हैं,
उनकी आँखों में से मैंने कभी आँसू नहीं बहने दिये।
मुझे जिसने भी प्रेम दिया है, उसकी मैंने कभी उपेक्षा नहीं की है।
मेरे मुँह में जिसने शक्कर रखी है,
उसकी जीभ पर कडवा नीम रखने की बात मैंने कभी
सपने में भी नहीं सोची है।
मेरे जीवनमार्ग पर जिसने फूल बिछाये हैं,
उसके जीवनमार्ग पर मैंने कभी काँटें नहीं रखें हैं।
यह बात मैं आपको इसलिए बताती हूँ कि
आपको पता चले कि मुझमें आयी हुई कठोरता, कर्कशता या
क्रूरता मेरा निजी स्वभाव नहीं है ; परन्तु मेरे साथ
हुए इसी प्रकार के व्यवहार का केवल प्रतिभाव है।
फव्वारे में गंदे नाले का पानी भरनेवाले को ऐसी आशा
तो नहीं रखनी चाहिये कि यह फव्वारा नीचे की तरफ आये,
तब उसमें गटर का पानी नहीं, गंगा का पानी हो।
मैं पिचकारी नहीं, फव्वारा हूँ। जैसा वर्तन मेरे साथ औरों का,
वही वर्तन औरों के साथ मेरा। आपको जो मार्गदर्शन देना हो,
दीजिये।

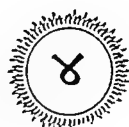
श्रद्धा,



तुम्हारा पत्र मिला।
पत्र में तुमने जिस प्रकार को भाषा का प्रयोग किया है,
वह पढकर आश्चर्य के साथ दु ख हुआ।
तुम्हारे जीवन में चाहे जैसा दुःख का तूफान आया हो,
परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि
तुम्हारे दुःख में जो भी व्यक्ति निमित्तरूप बने हों,
उन सबको दुःखी करने के लिए तुम कटिबद्ध बन जाओ।
'जैसे के साथ तैसे' की नीति का तुमने जो अर्थ किया है,
उससे सिर्फ इतना ही सूचित होता है कि तुम्हारी बुद्धि पर
आवेश ने अपना कब्जा जमा लिया है,
तुम्हारे मन में बैठे हुए पूर्वग्रह या कदाग्रह ने कब्जा जमा लिया है,
तुम्हारे दिमाग पर सवार हुई बदला लेने की वृत्ति ने कब्जा जमा लिया है।
जानना चाहती हो इसका सही अर्थ?
तो देखो, सामनेवाले के हाथ में यदि धारदार तलवार हो,
तो तुम्हारे हाथ में मजबूत ढाल होनी चाहिये।
यदि तुम्हें एवरेस्ट के शिखर पर पहुँचने की चुनौती स्वीकारनी हो,
तो इसके लिये जोरदार तैयारी चाहिये। यदि तुम्हें सी ए. की
परीक्षा देनी हो, तो पढने की मेहनत जोरदार चाहिये।
यदि तुम्हें २००० मीटर की दौड में नंबर लाना हो,
तो पाँवों में ऐसी रफ्तार व मजबूती होनी चाहिये।
यदि तुम्हें कीमती नेकलेस लेना हो, तो उतने रुपये भी चाहिये।
यदि तुम्हें बडे डॉक्टर के पास तबीयत दिखानी हो,
तो उसे चुकाने के लिये तगडी फीस तुम्हारे पास होनी चाहिये।
सामनेवाले का क्रोध यदि जालिम है,
तो तुममें क्षमा भी इतनो मजबूत ही चाहिये।
सामनेवाले व्यक्ति को यदि तुम्हारे प्रति वहुत द्वेष हो,
तो तुम्हें उसके प्रति प्रेम जोरदार होना चाहिये।
सक्षेप में, जेसी चुनौती, वसी तैयारी।

जैसा माल, वैसा मूल्य।
जैसा कषाय, वैसा उपशमभाव।
जैसी वासना, वैसी उपासना।
यह है 'जैसे के साथ तैसे' का सही अर्थ।
हाँ, यह अर्थ तुम्हारे दिमाग में न बैठता हो और तुमने जो अर्थ किया है,
वही सही लगता हो, तो मैं तुमसे जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो।
डॉक्टर के पास मरीज आता है, तब डॉक्टर मरीज बन
जाता है या मरीज डॉक्टर बन जाता है?
गुंडे के सामने पुलिस आ जाय, तब गुंडा पुलिस बन जाता है
या पुलिस गुंडा बन जाता है? तुम्हारे घर में अचानक आग लग जाय,
तो उसे बुझाने के लिये तुम दूसरी आग ले आओगी या पानी?
तुम्हारा देहात का घर किसीने आधा तोड दिया हो, तो
तुम उसे रिपेर करने के लिए मजदूर ले आओगी या गुंडा?
तुम्हारे चश्मे किसीने तोड दिये हों, तो
तुम उसके चश्मे तोड़ोगी या अपने चश्मे को रिपेर कराओगी?
तुम्हारे कपडे कोई फाड डाले, तो
तुम उसके कपडे फाडोगी या अपने कपडे सीओगी?
कुत्ता तुम्हें काटने पर तुम उसे मारने दौड़ोगी या वहाँ से हट जाओगी?
है तुम्हारे पास मेरे इन प्रश्नों का कोई जवाब?
श्रद्धा,
दिमाग को थोड़ा ठंड़ा रखती जाओ। तुम्हारे घर में जो संघर्ष का
वातावरण छाया है, इसमें सिर्फ तुम्हारा ही कसूर चाहे न हो,
लेकिन तुम्हारा भी कसूर तो होगा ही,
यह मैं शंका के बिना कह सकता हूँ। क्योंकि कुटुंब में
जहाँ एक ही व्यक्ति की गलती या आवेश होता है,
वहाँ कलह या क्लेश कभी भी दीर्घजीवी नहीं बनता।
तुम्हारे घर का झगड़ा लंबे वक्त का है।
इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि झगडे को बढ़ाने में
तुमने भी अच्छा योगदान दिया है।

महाराज साहेब,



आपके एक ही पत्र ने मुझे फरियादी के कटघरे से निकालकर अपराधी के कटघरे में खडा कर दिया है।
खूब शान्त चित्त से मेंने आपके पिछले पत्र पर विचार किया।
तब मुझे लगा कि 'जैसे के साथ तैसे' का आपके द्वारा किया गया अर्थ ही सही है। आग का स्वरूप यदि चिनगारी का नहीं, परन्तु दावानल का हो, तो उसे बुझाने के लिये पानी का स्वरूप भी बाल्टी का नहीं दमकल का ही होना चाहिये, यह समझ में आ जाय, वैसी बात है।
फिर भी मेरे जीवन में ऐसी करुणता का सर्जन हुआ है कि हृदय के क्षेत्र में मे यह बात समझ नहीं पायी। दंभ के बिना खुले दिल से कहुं, तो मेंने सामनेवाले व्यक्ति के चिनगारी जैसे क्रोध के जवाब के रूप में दावानल जैसा क्रोध प्रकट किया हे।
सामनेवाले व्यक्ति के बुदबुदे जैसे गलत वर्तन के जवाब के रूप में मैंने बाढ जैसा गलत बर्ताव किया है।
सामनेवाले व्यक्ति के काटे जैसे शब्दोच्चार का जवाब मैंने भाले जैसे शब्दोच्चार से दिया है।
सामनेवाले व्यक्ति के द्वारा पैदा की गयी उपेक्षा की दरार का जवाब मेंने अवगणना के सुराख से दिया है।
आपका अनुमान एकदम सही है कि घर में चलते हुए दीर्घकालीन सघर्ष के लिये मैं भी जवाबदार तो हूँ ही। फिर भी एक बात आपसे खास पूछ्ना चाहती हूँ कि अठारह-अठारह वर्ष अपने पिता के घर में बितानेवाली एक कन्या अनेक अरमान लेकर जब किसीके घर में वहू बनकर प्रवेश करती है, तब उस कन्या के अरमान पूरे करने की जवाबदारी उस परिवार के सदस्यों की नहीं?
उस कन्या के साथ वस्तु जेसा व्यवहार न करते हुए जीवत व्यक्ति जेसा व्यवहार करने की सहृदयता दिखाने की जवाबदारी उस परिवार के सदस्यों की नहीं?

क्या बताऊँ आपको?
इस घर में मुझे ऐसा कहा गया है कि मुझे सबको सभाल लेना है। मैंने संबन्ध चाहे सिर्फ दर्शन के साथ ही बांधा हो, परन्तु मुझे दर्शन के मम्मी, पप्पा, भाई, बहन, विधवा चाची, मंदबुद्धि भाभी आदि सबको संभाल लेना है।

नोकर को
सिर्फ एक सेठ की आज्ञा माननी होती है।
क्लर्क को
सिर्फ एक मेनेजर का हुकम बजाना पडता है।
शिष्य को
सिर्फ एक गुरु का ध्यान रखना होता है।
भक्त को
सिर्फ एक भगवान को खुश करना होता हे
परन्तु
एक स्त्री को, वहू बनकर किसी घर की शोभा बढानेवाली (?) स्त्री को सिर्फ पति ही नहीं, पति के परिवार के सब सदस्यों का ध्यान रखना होता है। सबको खुश रखना होता हे।
सबकी जरूरतों का ध्यान रखकर
सबकी जरूरतें पूरी करनी होती हें। क्या यह व्यवस्था बराबर है?
क्या यह अपेक्षा उचित है? आपको सच बताऊँ?

मैं आधुनिक जमाने की युवती हूं।
कम्प्यूटर इंजीनियरिंग तक का मेरा शिक्षण हे।
बुद्धि के क्षेत्र में में आगे हूँ। इसीलिये बरसों से चली आनेवाली इस व्यवस्था के सामने मेंने सर उठाया है।

मम्मी की मौजूदगी में ही मैंने दर्शन से कह दिया है कि
'मैंने तुमसे शादी की है, मम्मी के साथ नहीं।
तुम्हारा सब काम करूँगी, मम्मी का तो एक भी काम नहीं करूँगी।'
बस, उसी दिन से घर में क्लेश की आग प्रगटी है, जो आज तक चालु है। क्या मेरा अभिगम गलत है?

श्रद्धा,



तुम्हारा पिछला पत्र पढते हुए एक बात की प्रतीति हो गयी कि जहॉ सिर्फ बुद्धि के ही फदे, वहॉ संबन्ध हैं खट्टे व उस घर में हैं क्लेश के छींटे। तुमने कम्प्यूटर इजीनियरिग का शिक्षण लिया, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम्हारी बुद्धि शुद्ध बन गयी है। हॉ, हो सकता है कि तुम्हारी बुद्धि सूक्ष्म हो, परन्तु ऐसी बुद्धि का क्या प्रयोजन, यदि बुद्धि में शुद्धि न हो तो? यदि बुद्धि में निर्मलता न हो तो? पिछ्ले पत्र में तुमने जो कुछ लिखा है, उसमें एक तरफ गलतफहमी है, तो दूसरी तरफ जबरदस्त विकृति है।

तुमको पता है न कि नौकर को सिर्फ सेठ का ही ध्यान नहीं रखना पड़ता, सेठ के कुत्ते का भी ध्यान रखना पड़ता है।

क्लर्क को सिर्फ मेनेजर को ही नहीं संभालना पडता, चपरासी को भी संभालना पडता है।

शिष्य को सिर्फ गुरु की सेवा ही नहीं करनी होती, गुरुभाईयों के साथ भी मेल रखना होता है।

भक्त को सिर्फ भगवान की ही भक्ति नहीं करनी होती, भगवान के परिवार में गिने जानेवाले समस्त जीवों के प्रति भी प्रेम टिकाये रखना होता है। ठीक इसी तरह ससुराल जाती हुई कन्या को सिर्फ पति का ही ध्यान नहीं रखना होता, पति के सर्व स्वजनों को भी यथोचित रूप से सभालना होता है।

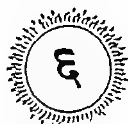
इतनी सीधी-सादी समझ यदि तुममें होती, तो दर्शन की मम्मी की सेवा करने का इन्कार तुमने न किया होता। तुम्हें शायद पता न हो, परन्तु वास्तविकता यह है कि

हमारे जीवन की शान्ति को छीनने का काम
हमें धिक्कारनेवाले इतना नहीं करते,
जितना हमारे लिये धिक्कार का विषय बननेवाले करते हैं।

हो सकता है कि तुम्हारे धिक्कार का विषय वननेवाले परिवार के सदस्य रात को चेन से गहरी नींद सो जाते हों, और तुम स्वयं रात को बिछोने में करवटें

बदलती रहो। परिवार के सदस्य पेट भरकर मिठाईयाँ उडाते हों,
और तुम स्वयं शान्ति से रोटी भी नहीं खा सको।
परिवार के सदस्यों के चेहरे पर प्रसन्नता बनी रहती हो,
और तुम स्वयं दिनभर बेचैन ही रहा करो। परिवार के सदस्य
मिले हुए जीवन का आनंद उठाते हों, और तुम स्वयं
जीवन समाप्त कर देने के विचार करो। इसका अर्थ क्या है?
द्वेष व धिक्कार को हृदय में स्थान देकर यदि हमें ही
दुःखी होना हो, तो ऐसे घाटेवाले धंधे में हाथ डालने
की मूर्खता करने की क्या ज़रूरत है?
मन को बेचैनी में व्यस्त रखकर यदि अपने ही हाथों
अपनी शान्ति की श्मशान यात्रा निकालनी हो,
तो ऐसी नादानी के शिकार बनने की क्या आवश्यकता है?
मन को व्यक्तियों के प्रति दुर्भाव से ग्रस्त रखकर यदि
अपने ही हाथ में रहे हुए सुख को आग लगानी हो,
तो ऐसी भयंकर भूल के शिकार बनने की क्या आवश्यकता है?
श्रद्धा,
मुझे तुम्हारे हृदय की ऐसी कोई जानकारी नहीं,
परन्तु पत्रों में तुमने जिस प्रकार के शब्दप्रयोग किये हैं,
उन पर से मैंने यह अनुमान निकाला है कि
कुटुंब के प्रति द्वेष व धिक्कार को हृदय में प्रतिष्ठित करके
तुमने हकीकत में तो स्वयं के ही जीवन को
श्मशानतुल्य बना दिया है। नन्दनवन बनने के लिये जिसका
सर्जन हुआ है, उस मन को तुमने स्वयं ही गन्दगी के ढेर जैसा
बना दिया है, स्वर्गतुल्य बनने के लिये जिसका सर्जन हुआ है,
ऐसे हृदय को तुमने स्वयं ही नरकतुल्य बना दिया है।
मैं तुम्हें फिलहाल इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहले अपने
हाथों को इत्र से सुवासित कर लो, उसके बाद ये हाथ
जहाँ भी फैलेंगे, जिस पर भी फिरेंगे,
वहाँ उन हाथों में से सुगन्ध ही फैलेगी।

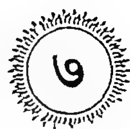
महाराज साहेब,



आपका अनुमान एकदम सच है और आपके द्वारा
लिखी गयी हकीकत भी बिल्कुल सच है।
कुटुंब के प्रति द्वेषभाव से मैंने मेरा जीवन तो बरबाद कर डाला है,
परन्तु मेरे द्वेषभाव की कुटुब के किसी भी सदस्य के
मन में स्मृति भी न होने से सब मस्ती से
अपना जीवन जी रहे हैं।
मैं त्रस्त और सब मस्त, मैं दु खी और सब सुखी,
मैं उद्विग्न और सब आनंदित। सच बताऊँ?
मैं मेरे गलत स्वभाव से जितनी दु खी हूँ, उससे अधिक
दु खी तो इसलिये हूँ कि मेरे गलत स्वभाव का किसी पर कोई
असर नहीं। मेरे अन्तर की गहराई में तो यही बात बैठी है कि
मेरा क्रोध सबके जीवन का सुख-चैन छीन ले। मेरा कर्कश
भाषाप्रयोग किसीको तो रोने को जरूर मजबूर करे।
मेरा गुस्सा किसीको तो दु ख का कारण बनना ही चाहिये।
परन्तु ऐसा कुछ नहीं होता, इसलिये मैं वहुत ज्यादा आवेश
में आ जाती हूँ। मेरी जीभ पर ज्यादा से ज्यादा जहर रखती जाती हूँ।
मेरे अन्त करण को मैं अधिकाधिक डंकीला बनाती जाती हूँ।
है इस अपाय से वचने का कोई उपाय?
श्रद्धा,
एक बात का खास ध्यान रखना कि
स्वयं के ही प्रेम में पड़नेवाले को कभी दुश्मन की या
प्रतिस्पर्धी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।
वह जहाँ जाता है, वहाँ दुश्मन बना ही देता है।
यदि तुम्हें सचमुच प्रसन्नता का अनुभव करना हो, तो
सबसे पहले प्रेम के केन्द्र पर से स्वय को हटाकर
कुटुंब को रख दो। मुझे तो इस वात का आश्चर्य होता है कि
स्त्री होने पर भी तुम कठोर कैसे वन पायी?
स्त्री होने पर भी तुम डंकीली कैसे वन पायी?

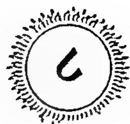
स्त्री होने पर भी तुम जहरीली कैसे बन सकी? जानती हो?
जितने भी गुण हैं, वे करीव-करीब स्त्रीलिंग में हैं,
जबकि जितने भी दोष हैं, वे करीब-करीव पुल्लिंग में हैं।
कोमलता कैसी?
करुणा कैसी?
नम्रता कैसी?
सरलता कैसी?
मैत्री कैसी?
उदारता कैसी?
सहृदयता कैसी?
संवेदनशीलता कैसी?
क्षमा कैसी?
कृतज्ञता कैसी?
जबकि
क्रोध कैसा?
आवेश कैसा?
लोभ कैसा?
भय कैसा?
अविवेक कैसा?
दोष कैसा?
अहं कैसा? शोक कैसा?
यह वास्तविकता इतना ही कहती है कि पुरुष के लिए कोमल बनना मुश्किल है, तो स्त्री के लिए कठोर बनना मुश्किल है।
फिर भी तुमने इस वास्तविकता को गलत साबित कर दिखाया है।
मैं इतना ही कहुँगा कि
जीवन में जो इन्सान अपने प्रेम का भागाकार करता रहता है, उसी जीवन में सुख का गुणाकार होता रहता है।
तुम तुम्हारे प्रेम को फैलाती जाओ, सुख तुम्हारे चरणों का दास बन जाएगा।

महाराज साहेब,



कागज पर 'प्रेम' शब्द लिखना आसान है,
जीभ पर बोलना आसान है, आँखों से पढना आसान है,
परन्तु जीवन में जीना बहुत मुश्किल है।
आप चाहे नहीं मानेंगे, परन्तु इस घर में मैं बहू बनकर आयी,
तब मन में अरमान थे कि इस कुटुंब के प्रत्येक सदस्य को
मैं 'अपना' बना लुँगी। प्रेमप्रदान के द्वारा इस कुटुंब के
एक-एक सदस्य का दिल मैं जीत लुँगी।
प्रेम की अभिव्यक्ति के द्वारा मैं इस घर को स्वर्ग बना दुँगी।
दीवार से बने हुए इस घर में स्नेह बरसाकर मैं प्रसन्नता का प्रवाह
बहाऊँगी। परन्तु मेरे ये सब अरमान चकनाचूर हो गये।
इस घर में सब 'एकवचन' में ही बात करते थे।
सबको सिर्फ स्वयं में ही दिलचस्पी थी और सब एक-दूसरे
का उपयोग करते थे। परिचय बढ़ाने में सबको दिलचस्पी थी,
परन्तु प्रेम देने के मामले में तो सब दिवालिये ही थे।
मुझे ऐसा लगा कि पानी डालना हो,
तो मिट्टी पर डालना, वह गीली तो होगी,
वृक्ष पर डालना, वह नवपल्लवित तो होगा,
वस्त्र पर डालना, वह साफ तो होगा,
धरती पर डालना, वह कोमल तो बनेगी,
अग्नि पर डालना, वह बुझ तो जायेगी,
परन्तु पत्थर पर पानी डालने का कोई मतलब नहीं।
बस, मैंने मेरे प्रेम को संकुचित कर दिया।
मेरे प्रेम के प्रवाह को बुद्धि की पाली बांधकर बहने से रोक दिया।
मेरे अरमानों की नमी पर मैंने वास्तविकता का कठोर
पत्थर रख दिया। मेरे हृदय में बहती हुई 'स्त्री' को मैंने
'रुक जाओ' का आदेश दे दिया।
जिस हाथ में ढाल रखने तक की मेरी इच्छा नहीं थी,
उस हाथ में मैंने तलवार पकड ली।

इसके बाद का परिणाम तो आप जानते ही हैं।
दर्शन मुझसे डरने लग गया है। जो सासु मुझे बात-बात पर
टोकती ही रहती थी, उस सासु की बोलती बन्द हो गयी है।
जो ननद मुझे सतत आज्ञा ही किया करती थी,
वह अब मेरी आज्ञा में आ गयी है।
मेरे रौब के आगे देवर का रौब ठंडा हो गया है।
ससुरजी के पास मेरी फरियाद शायद कोई कर भी दे, परन्तु
मेरे आगे कुछ भी कहने की उनकी हिम्मत नहीं चलती।
मेरी एक-एक इच्छा को महत्त्व दिया जाने लगा है;
उसकी अवगणना करने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता।
घर में मेहमानों को भोजन का निमंत्रण दिया जाय या नहीं,
इसका निर्णय मैं करती हूँ।
घर में किसीको बाहर घूमने जाना हो, तो मुझे पूछना
अनिवार्य बन गया है।
महाराज साहब,
मैंने दोनों अनुभव कर लिये हैं।
स्नेहशील बनी रही, संवेदनशील बनी रही, प्रेममय बनी रही,
तो सबसे मैं दबती रही, अन्याय सहती रही,
तकलीफों में पड़ती रही और
अभिमान से रहती रही, मुँह फेरकर बात करती रही,
चेहरे की रेखा तंग रखकर घूमती रही,
तो सबको दबाकर रख सकी,
मेरा मनचाहा काम करा सकी, मेरी उपस्थिति की
ओर सबका ध्यान खींच सकी।
अब आप ही बताइये, मैं क्यों बुद्धि का रास्ता छोड़कर
हृदय का रास्ता चुनने की गलती करूँ?
मुझे सिर्फ जीना ही नहीं, जीतना भी है और इसके लिये मैंने
जो राह अपनायी है, वह एकदम सही है, ऐसा मुझे लगता है,
आपका क्या कहना है?



श्रद्धा,
तुमने रॉकेट देखा है?
वह ऊपर चढ़ना शुरू करता है,
तब उसका आन्तरिक दहन शुरू हो जाता है और
आगे चलकर वह स्वयं जलकर खाक हो जाता है।

पूर्वपत्र में तुमने जो कुछ लिखा है, वह पढने के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अभी की तुम्हारी वृत्ति-प्रवृत्ति यदि इसी तरह जारी रही तो तुम्हारा अंजाम भी इस रॉकेट जैसा ही है।

मेरे इस कथन में यदि तुम्हें शका हो, तो पढ लो कुछ ही वर्ष पूर्व मुबई के एक उपनगर में घटी यह सत्य घटना।

उस दिन प्रवचन देकर मैं मेरे आसन पर बैठा था। उसी वक्त एक भाई मुझसे मिलने आये। 'महाराज साहेब। आप व्याख्यान में संसार की असारता का वर्णन चाहे हृदयद्रावक शब्दों में करते हों, परन्तु आज मैं मेरी सगी ऑखों से जो देखकर आया हूँ और सगे कान से जो सुनकर आया हूँ, वह सुनकर तो आप स्वयं चौंक उठेंगे।'

'क्या कहना चाहते हो तुम?'

हॉ, आप सुनिये।

मेरे पडोस में ही एक परिवार रहता हे, जिसमें पुत्र, बहू और सासु रहते हैं। पुत्र जवान है, मॉ बूढी है, वहू उच्छृंखल है। कल सुवह करीव दस बजे सासु रसोईघर में रोटी बना रही थी और बहू सोफासेट पर बैठकर टी वी. देख रही थी। अचानक बहू के कान में 'राम बोलो भाई राम' की आवाज सुनायी दी। खडी होकर उसने नीचे नजर डाली तो पता चला कि पडोस की बिल्डिग में रहनेवाली एक वृद्धा मॉजी चल बसी थीं, उन्ही की श्मशानयात्रा निकल रही थी। अचानक उसे न जाने क्या हुआ, वह दौडी रसोईघर में, सासु का हाथ पकड़कर उसे ले आयी बरामदे में, जहॉ वह स्वय खडी थी और उसने सासु को असभ्य शब्दों में कहा.. 'बुढिया! दिखता है, यह क्या है?'

'हॉ, किसीकी श्मशानयात्रा निकली लगती है।'

'तेरी कब निकलनेवाली है?'

हृदय की धडकन बन्द कर दे,
ऐसा वहू का प्रश्न सुनकर सासु तो स्तब्ध रह गयी,
फिर भी स्वस्थता धारण करके धीमे से इतना ही बोली,
'बहन! वक्त आने पर मेरी भी निकलेगी।'
'वक्त लाना तो तेरे ही हाथ में है।'
'क्या कहना चाहती हो, मैं समझी नहीं।'
'घर में घासलेट का डिब्बा है। वह लेकर शरीर पर छिडक दे,
तो वक्त आज ही आ जायेगा, यदि इसके लिये हिम्मत नहीं चलती हो,
तो खटमल मारने की दवा मैं ला देती हूँ। वह पी ले,
तो भी वक्त आ जायेगा और इसमें तुझे दिलचस्पी न हो,
तो चल मेरे साथ, रेल की पटरी तक मैं तुझे छोड दूँ।
पटरी पर सो जा, वक्त तुरन्त आ जायेगा।'
धधकता हुआ सीसा कान में डालने पर जो वेदना हो,
उससे भी जालिम वेदना सासु को वहू के शब्द सुनकर हुई,
परन्तु वह बेचारी क्या कर सकती थी?
पुत्र आज्ञाकारी था, विनयी था, परन्तु वह नौकरी पर चला गया था।
आँख में आँसूओं के साथ वह पुनः रसोईघर में लौटी और
संतप्त दिल से गैस के चूल्हे पर पुन. रोटी वनाने लगी।
वहू टी.वी. देखने में मशगूल वन गयी।
परन्तु महाराज साहेब!
रात को करीब नौ बजे वहू सब्जी का छौंका कर रही थी
और
यकायक क्या हुआ, कुछ पता न चला। गैस का सिलेंडर फटा।
घर में आग लग गयी। रसोईघर में से वहू बाहर निकले,
इससे पहले तो आगने उसे लपेट में ले लिया व कुछ ही क्षणों
में वहू जलकर भस्म हो गयी। सासु की श्मशानयात्रा का
वक्त निश्चित करने की वात करनेवाली वहू की श्मशानयात्रा
आज सुवह निकल गयी।
यह है हमारे संसार की नग्न वास्तविकता।'

श्रद्धा,



जिस दिन मैंने यह किस्सा सुना, उस दिन दुपहर में
मैं गोचरी ग्रहण नहीं कर पाया। बुद्धि की गर्मी का,
दिल की वक्रता का व अहं के उफान का ऐसा करुण अंजाम?
मातातुल्य सासु को आत्महत्या करके मर जाने की
बात करनेवाली बहू की ऐसी करुण दशा?
तुम तुम्हारे वर्तन, वचनोच्चार व विचारधारा का शान्त चित्त से
निरीक्षण करके मुझे बताना कि कहीं तुम भी ऐसी बहू का
प्रतिनिधित्व तो नहीं कर रही हो न?
अधिकार जमा देने की तुम्हारे दिल में रमती हुई वृत्ति,
उस बहू की वृत्ति के साथ तालमेल तो नहीं रखती है न?
घर के सदस्यों को दबाव में रखने के लिये तुम्हारे द्वारा
अपनाया गया आक्रामकता का अभिगम,
उस बहू के अभिगम से मिलता-जुलता तो नहीं है न?
तुम्हें शायद पता नहीं होगा कि
जो सर्व में समा सकता है व स्वयं में सर्व को समा सकता है,
वही सही अर्थ में अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता है। बाकी,
मौत के बाद स्वयं के नाम के आगे 'स्वर्गस्थ' शब्द
रखवाने के लिये इन्सान को कुछ नहीं करना पड़ता,
सिर्फ मरना ही पड़ता है, परन्तु
स्वयं के नाम के आगे जीवन-काल दौरान
'सर्वस्थ' शब्द रखे जाने के लिए तो इन्सान को
जिंदगी भर अपने मन के साथ संघर्ष करना पड़ता है,
अन्य के दु.ख में उसे संवेदनशील बने रहना पडता है,
स्वयं पर आनेवाले कष्टों में उसे सहनशील बने रहना पडता है,
औरों के साथ के व्यवहार में उसे प्रेममय बने रहना पडता है
और अपनी अपेक्षा से विरुद्ध कुछ भी होने पर उसे 'जाने दो'
की वृत्ति रखनी पडती है। अत्यन्त गंभीरता के साथ मेरी इन
बातों पर तुम विचार करोगी तो रो पडोगी।

तुम्हारी जीवन-व्यवस्था में है इसमें से एक भी अभिगम को स्थान?
है तुममें संवेदनशीलता?
है तुममें सहनशीलता?
है तुममें स्नेहशीलता?
है तुममें 'जाने दो' कहने की वृत्ति?
यदि नहीं, तो इसका एक ही अंजाम है,
शायद आग जैसे स्वभाव के कारण आज वर्चस्व स्थापित करने में तुम्हें सफलता मिल भी जायेगी, फिर भी इस जीवन में तुम्हें सर्वस्थ का गौरवमय पद नहीं मिलेगा,
मौत के बाद मिलनेवाला 'स्वर्गस्थ' पद ही मिलेगा।
और 'स्वर्गस्थ' पद तुम्हारे नाम के आगे लिखते हुए भी तुम्हारे परिवारजनों को आनन्द नहीं होगा, क्योंकि स्वर्ग में तुम्हें स्थान मिल सके, ऐसी कोई संभावना तुम्हारे जीवन में नहीं थी, इस बात का उन्हें पता होगा ही।
श्रद्धा,

आनेवाले कल की पराजय के बीज जिसमें डाले गये हों,
ऐसी आज की जीत से दूर ही रहना चाहिये।
भावि के सुख को हानि पहुँचाये, ऐसे वर्तमान सुख को दूर से ही नौ गज के नमस्कार करने चाहिये।
अधिकार का उपयोग करते हुए धिक्कारपात्र न बन जायें, इसकी खास सावधानी रखनी चाहिये।

मैं तुमसे इतना ही कहूँगा कि जिस प्रकार शिखर पर की ध्वजा बदलने से तलहटी के दु:खदर्द कम नहीं हो जाते, उसी प्रकार बाह्य से सब पर आधिपत्य जमा देने मात्र से अन्तःकरण में प्रसन्नता की प्रतिष्ठा नहीं हो जाती। कम्प्यूटर इंजीनियरिंग की परीक्षा में पास करनेवाली सूक्ष्म बुद्धि के स्वामी बनना अलग बात है और सबके दिल जीतनेवाली अंत:करण की विशालता की परीक्षा में उत्तीर्ण बनानेवाली शुद्ध बुद्धि के स्वामी बनना अलग बात है। यह सत्य सतत नजर के समक्ष रखना।

१०

महाराज साहेब,

आपके पिछले दो पत्र पढने के बाद में रात को सो नहीं पायी। मेरी भोजन की रुचि बिल्कुल खत्म हो गयी है। एकान्त मिलते ही मेरी ऑखों में से ऑसू बहने लगते हैं। जो सत्य घटना आपने लिखी है, उस बहू में मुझे स्वयं के दर्शन होते रहते हें। हालॉकि, मेरी सासु को मैंने ऐसी निचले स्तर की चुनौती कभी नहीं दी है, परन्तु मन ही मन उसके मर जाने के व उसे मार डालने के विचार कई बार किये हैं। मेरे लिये इसका अंजाम उस बहू के जैसा तो नहीं आयेगा न? इस कल्पना मात्र से में कॉप उठी हूॅ। अभी मैं आपको अधिक कुछ लिख सकने की स्थिति में नही हूॅ। आपसे सिर्फ इतनी ही विनंती करती हूॅ कि आप मुझे कुछ ऐसा लिखिये कि जिससे मेरा चित्त आंशिक रूप से भी स्वस्थ बन जाय। मेरा मन थोडा-बहुत भी निर्भय बन जाय।
नहीं तो मैं पागल हो जाऊॅगी।

श्रद्धा,

पानी में गिरता हुआ पत्थर जहाँ वह गिरता है, वहीं पर तरंग पैदा करता है, यह सत्य तुम एक पल के लिये भी भूलना मत।

तुम अपने मन में चाहे क्रोध को जन्म दो या क्षमा को,
द्वेष को स्थान दो या प्रेम को,
तुच्छता को स्थान दो या विशालता को,
क्षुद्रता को स्थान दो या गंभीरता को,
उच्छृखलता को स्थान दो या नम्रता को,
उद्दण्डता को स्थान दो या सौजन्य को,
इसमें सामनेवाले को नुकसान या लाभ चाहे हो या न भी हो,
परन्तु सबसे पहले तो नुकसान या लाभ तुम्हें ही होगा।
और तुंम्हें अवश्य होगा ही, इसमें दो राय नहीं।
तुम प्रसन्नता की अनुभूति करना चाहती हो न?

निर्भय बनना चाहती हो न?
स्वस्थ रहना चाहती हो न? तो एक काम करो।
तुम्हारे हृदय में तमाम उदात्त गुणों की प्रतिष्ठा कर दो।
क्रोध की राह अपनाकर मिल सकनेवाली जीत पर चौकड़ी मारकर क्षमा की राह अपनाने से संभवित पराजय का सत्कार करने के लिये दिल को तैयार कर दो। आकाश में उडनेवाली चील का प्रतिनिधित्व करने के बदले वृक्ष की डाल पर सोयी हुई चिडिया का प्रतिनिधित्व करने के लिये मन को तैयार कर दो।
सबसे ऊपर रहकर बडे बनने की महत्त्वाकाक्षा को त्यागकर सबको ऊपर रखकर महान बनने की महात्त्वाकांक्षा को अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर दो। हम सबको अपना नहीं बना सकते, परन्तु हम 'सबके' बन तो जरूर सकते हैं।
इस सत्य को जीवन में चरितार्थ करने के लिये तुम्हारे मन को कटिबद्ध बना दो।

पश्चिम की ही खिड़की जैसे नकारात्मक अभिगम को जीवन में स्थान देते रहकर सुख का सूर्यास्त देखते रहने के बजाय पूर्व की खिड़की जैसे हकारात्मक अभिगम को जीवन में स्थान देते रहकर सुख का सूर्योदय देखते रहने में ही इस जीवन की सार्थकता समायी हुई है।

इस हकीकत के साथ सम्मत होने के लिये अपने दिल को तेयार कर लो। में तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि इस राह पर कदम रखने के संकल्प मात्र से तुम्हारे अन्त.करण में जो प्रसन्नता का स्वर्ग उतरेगा, वह स्वर्ग सिर्फ तुम्हें ही प्रसन्नता के गगन में विचरण नहीं करायेगा, परन्तु तुम्हारे समस्त कुटुंब को भी प्रसन्नता के गगन में विचरण करायेगा। तुम्हें पता ही होगा कि जेसे ही नाली में पानी वहने लगता हे, सारा वगीचा हरा-भरा वनने लगता हे।
तुम्हारे घर में तुमने स्वयं को नाली के स्थान पर प्रस्थापित कर दिया है, यह में अच्छी तरह से जानता हूँ।

महाराज साहेब,

११

आपका आभार मानने के लिए मेरे पास कोई
शब्द नहीं। बरसों से किनार पर इकट्ठे हुए कचरे का
नदी में आनेवाली बाढ एक ही धडाके में अपने साथ
खींच ले जाती है, गॉव के छोर पर पडे गदगी के
ढेर को अग्नि की ज्वाला जिस प्रकार पल-दो पल में
भस्मीभूत कर डालती है। ठीक इसी प्रकार
आपके पिछले पत्र ने बरसों से मेरे मन में बैठी हुई गलत
धारणा को एक ही धड़ाके में साफ कर डाला है।
सच बताऊँ? आपका पहला पत्र मुझ पर आया,
तब में आपके साथ लडने के 'मूड' में थी।
'दर्शन की ताकत थी तो उसे मेरे साथ बात करनी चाहिये थी,
वह आप तक आ पहुँचा? ओर वह भी मेरी फरियाद करने?
में दर्शन को तो देख लुँगी, परन्तु महाराज साहेब को भी
देख लुँगी।' इसी हिसाब से मैंने आपके साथ पत्रव्यवहार चालु
रखने की इच्छा रखी थी, परन्तु मेरी खुशनसीबी मानिये कि
**आपकी हृदयस्पर्शी दलीलों ने मेरे अहं की अग्नि
को बुझा दिया। मुझे मेरी बुद्धि की मर्यादा से
अवगत करा दिया। मेरी विकृत जीवन पद्धति की
खतरनाकता का मुझे ख्याल दे दिया।**
फिलहाल मेरी ऑखें अश्रूसभर है,
मेरा हृदय पश्चातापसभर है,
मेरा दिल शर्मसभर हे।
मैं आपके पास क्षमा की याचना करती हूँ
और आपके पास ऐसा सम्यक् मार्गदर्शन चाहती हूँ,
जिसके बल पर में मेरे समस्त कुटुब को नन्दनवन
की शीतलता व प्रसन्नता की अनुभूति करा सकुँ।
मैं स्वय तो शीतल बनुँ हां, साथ ही साथ सबको शीतल बनाऊं।
मैं स्वय तो समाधि में रहुँ हां, साथ ही साथ सबको समाधि देती रहुँ।

श्रद्धा,
विचार परिवर्तन व हृदय परिवर्तन को सूचित करते हुए
वाक्य तुम्हारे पिछले पत्र में पढकर अत्यत आनन्द हुआ।
तुमने मेरे पास क्षमा की याचना की, परन्तु
तुमने मेरा कोई अपराध किया हो,
ऐसा मुझे लग ही नहीं रहा,
तो किस बात के लिये क्षमा करूँ?
फिर भी यदि मेरे क्षमाप्रदान से तुम्हारा दिल हल्का बनता
हो, तो जाओ, मैंने तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक माफ किया।
अब सुनो एक महत्तवपूर्ण बात!
जीवन के एक गंभीर सत्य को सतत नजर के समक्ष
रखना कि **छोटे से समाधान में बड़ी लड़ाई को समाप्त
कर देने की ताकत है, तो छोटी-सी गलतफहमी
में बड़ी लड़ाई पैदा करने की पाशवी ताकत है।**
इस बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान इसलिये खींचना चाहता हूँ
कि तुम जब अब जीवन को स्वस्थ, मस्त व प्रसन्न बनाना चाहती
ही हो, तब तुम्हारे मन को तुम्हें समाधानों के लिये सतत तैयार
रखना ही पडेगा और साथ ही साथ मन किसी गलतफहमी का
शिकार न बन जाय, इसकी भी सतत सावधानी रखनी पडेगी।
समाधानवृत्ति है दीपक की ज्योत जैसी,
जबकि
गलतफहमी है छोटी-सी चिनगारी जैसी।
एक में गहन अंधकार को भी दूर करने की क्षमता है,
जबकि
दूसरे में सुन्दर उपवन को भी जला देने की पाशवी क्षमता है।
गलतफहमी की पाशवी ताकत का अनुभव तो तुम आज
तक करती ही चली आयी हो।
अब तुम समाधान की ताकत का अनुभव करने लगो,
तुम्हारे आनन्द को तुम शब्दों में लिख नहीं पाओगी।



महाराज साहेब,
'समाधान' का अभिगम अपना लेने की आपकी सलाह
वैसे तो ठीक है, परन्तु आपसे एक बात पूछुं?
समाधान का अर्थ स्वीकार होता है ऐसा मैं समझी हूं।
चाहे जैसी विकट या प्रतिकूल परिस्थिति आये,
सामनेवाले व्यक्ति का स्वभाव चाहे जैसा रुखा या कर्कश हो,
इसका हम प्रतीकार या इन्कार न करके स्वीकार ही कर लें।
परन्तु ऐसा करने में हमें ही सतत अन्याय का शिकार बनना
पडे या दबे रहना पडे, ऐसा तो नहीं न? हमें ही नुकसान
भुगतना पडे या अप्रिय बनते रहना पडे, ऐसा तो नहीं न?
श्रद्धा,
तुम्हारे द्वारा दर्शाया गया भयस्थान एकदम गलत ही है,
ऐसा तो मे नहीं कहूँगा,
परन्तु इतना तो जरूर कहूँगा कि
परिस्थिति की बैलगाड़ी मन को इतना गंदा नहीं
बनाती, जितना गंदा अधैर्य बनाता है;
यह वास्तविकता सज्जनता अपनाने के लिये तैयार होनेवाले
प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय पर खुदवाकर ही रखनी पडती है।
मैं मानता हूँ कि
समाधान की राह में तुम्हें अन्याय सहना पडा,
नुकसान की शिकार बनना पडा, परन्तु
यदि तुम थोडी ज्यादा धीरज रख सको,
तो सभव है कि अन्याय सहने पर भी सामनेवाले
व्यक्ति के दिल को जीतने में तुम्हें सफलता मिल जाय।
नुकसान की शिकार बनने पर भी सामनेवाले व्यक्ति के
हृदय में तुम्हारा स्थान स्थिर करने में तुम सफल बन जाओ।
क्या तुमने पढा है यह बढिया वाक्य?
चोर के द्वारा लूटे जाने के बाद भी जो हॅस सकता है,
वास्तव में तो वह चोर को ही लूट लेता है।

इसका तात्पर्यार्थ स्पष्ट है।
सहन करके भी जो चेहरे पर मुस्कान रख सकता है,
वह वास्तव में तो आक्रमण करनेवाले को ही जीत लेता है।
सच बताऊँ? जिस प्रकार पृथ्वी पृथ्वी ही है, आकाश नहीं,
उसी प्रकार स्त्री स्त्री ही है, पुरुष नहीं।
जमाना चाहे जितना आगे क्यों न बढे, स्त्री-स्वातंत्र्य
का आंदोलन चाहे जितना क्यों न चले, स्त्री स्त्री ही
रहनेवाली है, वह पुरुष बन नहीं सकती और यह
वास्तविकता स्त्री के लिये कलंकप्रद नहीं।
कमल गुलाब नहीं बन सकता, यह हकीकत
कमल के लिये कलंकप्रद न गिनी जाती हो, तो
स्त्री पुरुष नहीं बन सकती, यह वास्तविकता
स्त्री के लिये हर्गिज कलंकप्रद नहीं।
'मकरंद दवे' की पंक्तियाँ तुमने पढी हैं? उनका तात्पर्य इस
प्रकार है 'विधाता ने बेटी का निर्माण किया, तब खूब उमंग
के साथ, कलाकारीवाले हाथों से कर दिया कमाल।
रूप का अंबार दुं, मधुरता अपार दुं, खजाना लुटाकर करुँ सबको
निहाल, देवियों से मांग ली मुस्कान व मध्यरात्रि की मापी सीमायें दूर,
थोडी-सी धूल ली, खेत की ओर तथा बेटी की आँखों में
भरा है नूर, चीनी का लेकर स्वाद उसने बेटी में दालचीनी लोंग
भी मिलाये तनिक, सूरज के श्वेतफूल, हास व उल्लास दिया,
देखकर उसे लगा, अब है कुछ ठीक।
विधाता ने पुत्री बनायी और उसे देख-देख,
बार-बार मुस्कुराता उसका मुख,
हृदय में है शान्ति, हर माता के लिये है रखा, हरा-भरा स्नेह,
कैसा है यह सुख।'
श्रद्धा, तुम कम्प्यूटर इंजीनियर हो न?
इन पंक्तिओं को हृदय से स्पर्श करके देखना,
तुम्हारी आँखें हर्षाश्रु से छलक उठेंगी।

श्रद्धा,



पिछले पत्र में लिखी गयी मकरंद दवे
की पंक्तियाँ जिस संदर्भ में पेश हुई हे,
उस संदर्भ पर गंभीरता से विचार करना।
स्त्री अथवा पुत्री शरीर से ज़रुर कोमल है, परन्तु
मन के क्षेत्र में सहनशीलता के मामले में वह
दुनिया के चाहे जैसे शक्तिशाली पुरुष से भी अधिक
बहादुर है, इस सत्य का इन्कार कोई नहीं कर सकता।
पिता का घर वह छोड सकती है, पति के समस्त परिवार को वह सभाल सकती है, बच्चे को नौ-नौ मास तक वह पेंट में रख सकती है, पुत्रों की प्रसन्नता के खातिर वह अपने अरमानों का त्याग कर सकती है, ढेर-सारे अन्याय सहकर भी वह समस्त कुटुब को स्नेह के सूत्र से बांध सकती है, कर्तव्य के पालन के लिये वह वासना का बलिदान देने का पराक्रम भी कर सकती हे।
क्या बताऊँ तुम्हें?
कुछ महीनों पहले एक ३५ वर्षीय महिला सत्संग के लिये मुझे मिलने आयीं, वह बहन पारसी थीं।
धर्मचर्चा चल रही थी, उसीमें उसने बताया,
'महाराज साहब। मैंने शादी नहीं की है।'
'कुछ कारण तो होगा न?'
'हाँ, मे अमेरिका में रहती थी। वहाँ मैं लाखों रुपयों का मासिक वेतन पाती थी। मेरे मम्मी-पप्पा भारत में रहते थे।
अचानक मेरे पप्पा को दिल का दौरा पडा।
अनेक उपचार करने के बावजूद पप्पा न वचे।
मे अमेरिका की नौकरी छोडकर भारत आ गयी।
उस वक्त मेरी उम्र २५ वर्ष की थी। भाई-बहन कोई थे नहीं।
घर में मे व मम्मी, हम दो ही रहते थे।
उन्हीं दिनों मेरे लिये रिश्ते आने शुरु हो गये।
मुझे देखने आनेवाले प्रत्येक युवक से मेरा एक ही प्रश्न था,

'शादी करके मैं तुम्हारे घर आऊँगी, उसके बाद तुम्हारी मम्मी को जिंदगीभर संभालने की मेरी जवाबदारी रहेगी, इसकी ना नहीं, परन्तु मेरे साथ मैं मेरी मम्मी को भी लाऊँगी। उसे तुम ज़िंदगी भर निभाने के लिए तैयार हो न?'

महाराज साहेब,

एक भी युवक ने मेरी यह ऑफर न स्वीकारी, और मैंने शादी करने की बात मन से निकाल ही फेंकी। आज उस बात को १० वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु मैं बिल्कुल मजे में हूँ। सुख पाने के लिए ही मैं शादी करनेवाली थी न? आज मैं मम्मी की सेवा करते हुए सचमुच सुख की अनुभूति कर रही हूँ। शादी न हो सकी, इसका मुझे कोई रंज नहीं।'

श्रद्धा,

पारसी युवती के मुख से उसके जीवन की यह खुमारी भरी दास्तॉ सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। मम्मी की सेवा के कर्तव्य के पालन के खातिर स्वयं के सुख की इतनी बडी कुर्बानी? और वह भी आनंदपूर्वक? हॉ, यह ताकत है स्त्री की। स्त्री को ऐसे ही 'पृथ्वी' की उपमा नहीं दी गयी है।

पृथ्वी के अनेक गुण होंगे, परन्तु इन तमाम गुणों में यदि कोई गुण शिरमौर हो, तो वह गुण है सहनशीलता का। स्त्री है सहनशीलता की मूर्ति।

मेरे इस कथन का अर्थ तुम ऐसा मत करना कि मैं तुम्हें सबका सब कुछ-सही या गलत, अच्छा या बुरा सहन ही करते चले जाने का कहता हूँ। परन्तु एक बात तो मैं तुम्हें खास कहूँगा कि जिस घर में स्त्री ने चाहे वह पुत्री हो या मम्मी हो, वहू हो या सासु हो, देरानी हो या जेठानी हो, नणंद हो या भाभी हो, सर फिराकर ही जीवन जीने का निश्चय कर रखा हो, वह स्त्री अपने कुटुंब का प्यार नहीं पा सकी है, अपने बच्चों या पति के या भाई के दिल में वह स्थान नहीं पा सकी है, इसमें कोई शंका नहीं।

महाराज साहेब,

१४

मम्मी की सेवा के खातिर अपनी शादी स्थगित कर देनेवाली पारसी युवती के प्रचंड सत्त्व की बात आपके पिछले पत्र में पढ़कर मेरी आँखें भर आयीं। कर्तव्य के पालन के खातिर कोई नवयुवती ऐसा पराक्रम भी कर दिखा सकती है, यह बात जीवन में पहली बार जानने मिली। उस युवती के विचार से मैं अभी भी स्तब्ध हूँ। परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि मुझमें भी ऐसा सत्त्व प्रकटाये।

मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ कि
अपनी मम्मी के प्रति आदर रखनेवाली स्त्री को,
अपने पति की मम्मी के प्रति आदर क्यों नहीं होता?
इसी प्रकार अपनी पुत्री पर प्रेम बरसानेवाली स्त्री
अपने घर में बहू बनकर आनेवाली किसीकी पुत्री
के प्रति प्रेम क्यों नहीं दर्शाती? मेरी ही बात बताऊँ?
मेरी मम्मी के प्रति मुझे भरपूर प्रेम है, जबकि
मेरी सासु के प्रति मुझे भरपूर तिरस्कार है।
मेरी सासु की भी यही स्थिति है। ससुराल गयी हुई अपनी पुत्री के प्रति उन्हें अत्यंत प्रेम है, परन्तु बहू बनकर उनके घर आयी हुई मेरे प्रति उन्हें अत्यन्त नफरत है।
इसका कारण क्या हो सकता है?

श्रद्धा,

इसका एक ही कारण है - राग।

राग है... बिना आकार के पत्थर जैसा, जो न किसीको देखना अच्छा लगता है और न ही किसीको संभालकर रखना अच्छा लगता है।

हाँ, बिन आकार का पत्थर जब प्रतिमा बनता है, तब सारी स्थिति ही बदल जाती है। वह दर्शनीय भी बनता है, वन्दनीय भी बनता है व पूजनीय भी बनता है।
इसी प्रकार जब राग, प्रेम में रूपांतरित हो जाता है,

तब वह आह्लादक भी लगता है, रमणीय भी लगता है, तथा सुखदायक भी लगता है। तुम शायद पूछोगी कि राग व प्रेम का कार्य क्या है? इन दोनों के बीच महत्त्वपूर्ण फर्क क्या है? इसका जवाब यह है कि

राग सिर्फ अपनों का ही ध्यान रखता है, जबकि प्रेम परायों को भी अपना बनाकर संभाल लेता है।

राग लघु दृष्टि है, जो सिर्फ नजदीक का ही देखता है, जबकि प्रेम विशाल दृष्टि है, जो खूब दूर का भी देख सकता है। पढी हैं तुमने मंजरी परीख की पंक्तियॉ? उन पंक्तियों का तात्पर्यार्थ इस प्रकार है. .

'उडती हे प्रेम की लहरियॉ, पल-पल मनायें इस प्रेम का जन्म-दिवस।
आशा-निराशा, राग-द्वेष, सुख-दु.ख के मनाये हे कितने जन्मदिन!
संवन्धों के कई इन्द्रप्रस्थों का किया है खांडवप्रस्थ में रूपान्तर।
सूख गये रंगों के प्रतर के नीचे ठडी से जमे हुए
अस्तित्व के स्तर के नीचे थोडा जीवन सत्त्व बाकी है।
हे मित्र, साथ रहकर जीने का करे ऐसा संकल्प,
जहॉ हताशा के नाले में फूटे, वहते हुए झरने का संगीत।'

श्रद्धा,

एक बार तुम राग के स्थान पर प्रेम की प्रतिष्ठा करके देखो। सासु में मम्मी के दर्शन करके देखो। हालॉकि, इसके लिये मन के साथ भरपूर संघर्ष करना पड़ेगा, अह की छाती पर चढने का सत्त्व दिखाना पडेगा। परन्तु इसमें यदि तुम्हें सफलता मिल जायेगी, तो फिर तुम्हें यह फरियाद नहीं करनी पडेगी कि 'मम्मी जितनी अच्छी लगती हे, सासु उतनी क्यों अच्छी नहीं लगती? नहीं, सासु में फिर तुम्हें सासु के नहीं, मॉ के ही दर्शन होने लगेंगे। अपने-पराये का भेद ही खत्म हो जायेगा, तो फिर तिरस्कार कहॉ से रहेगा?

महाराज साहेब,



आदर्श के रूप में आपकी बात ठीक है,
परतु वास्तविक जीवन में भला यह सभव है?
सासु को 'मम्मी' कहकर सबोधित करना अलग
बात हे और सासु में 'मम्मी' के दर्शन करना
ओर बात है। हॉ,
सासु भी 'बहू' में 'पुत्री' के दर्शन करने लगे, तो लंबे समय के बाद शायद आप कहते हैं उस प्रकार की अनुभूति जरूर हो सकती है, परन्तु बहू सासु को मम्मी माने, फिर भी सासु बहु को बेटी न माने, तो उन दोनों के बीच के संवधों में आत्मीयता का अनुभव होने की सभावना मुझे नजर नहीं आ रही। मेरे इस अनुमान में आपको भी सम्मत होना पडेगा।

श्रद्धा,

मन की यही तो चालबाजी है।
वह कभी भी अपने फर्ज का विचार करने को तैयार ही नहीं होता, ओर शायद तेयार होता भी है, तो उसी पल सामनेवाले के फर्ज का भी विचार करने लगता है। तुम्हारी सासु को तुम्हें वहू न मानकर पुत्री मानना चाहिये। यह दलील उठाने की तुम्हें छूट हे, परन्तु इससे पहले एक बार तुम अपनी सासु को अपने जीवन में मम्मी का स्थान देकर तो देखो, उनके साथ के व्यवहार में मम्मी के रूप में प्रेम का प्रतिबिब पैदा करके तो देखो, पुत्री वनकर उनके आगे लाड-प्यार से रहकर तो देखो।
नहीं, यह तुम्हें करना नहीं है ओर दलील उठानी हे कि पहले सासु मुझे उनके घर में पुत्री का स्थान दे, बाद में हा मे उन्हें मेरे मन में मम्मी का स्थान दूँगी।

श्रद्धा,

यह सारी विचारधारा ही गलत है। **बिगडे हुए संवंधों में यदि सचमुच मिठास पैदा करनी हो, तो उसकी पहल हमें ही करनी पड़ती है। सामनेवाले व्यक्ति के भी ऐसे ही**

प्रतिभाव की आशा रखने का कोई अर्थ नहीं।
तुम जानती हो? प्रेम तो आग जैसा है। आग जिस प्रकार अपना रास्ता स्वयं ही बना लेती है, उसी प्रकार प्रेम अपना कर्तव्य स्वयं ही निभा लेता है, वह राह देखने नहीं बैठता कि सामनेवाला व्यक्ति भी अपना कर्तव्य अदा करता है या नहीं?

क्या वताऊँ तुम्हें? कुछ समय पहले ही भारत से अमेरिका गया हुआ एक पूर्व परिचित युवक मुझसे मिलने आया। अपनी पुत्री के संस्कार की उसने जो बात की, वह सुनकर में तो स्तब्ध रह गया। उसीके शब्दो में... 'महाराज साहेब,

मेरी बेटी की उम्र है.... २४ वर्ष।

चार महीने पहले अमेरिका में रहनेवाले हमारी ही जाति के एक युवक के साथ मैंने उसका रिश्ता तय किया। अमेरिका में सदाचार या मर्यादा के मामले में भारत जेसे कोई नियंत्रण न होने पर भी मेरी पुत्री मेरे दामाद को उसके घर के सिवाय और कहीं भी एकान्त में मिलने का टालती है। मेरे दामाद को भी मेरी वेटी का यह वर्ताव पसन्द ही है, परन्तु एक वार उसकी सासु ने जब खुद उसे वाहर घूमने जाने के लिए कहा, तब उसने सासु से कह दिया कि 'देखिये मम्मी, शादी से पहले मैं इस घर में कभी-कभार आती हूँ, उनसे मिलने नहीं, परन्तु आपके साथ उनका बर्ताव कैसा है, यह देखने के लिए आती हूँ। यदि उनका आपके साथ वर्तन बरावर न हो, तो मुझे उनसे यही कहना है कि "जिस मम्मी के तुम पर अनत उपकार हैं, उस मम्मी के साथ भी यदि आप ठीक ढंग से नहीं रह सकते, तो आप पर मेरा तो कोई उपकार नहीं, मेरे साथ आप किस प्रकार अच्छी तरह से रहेंगे? नहीं मम्मी! मुझे उनके संग कहीं घूमने जाना नहीं है। मुझे उन्हें जितना संभालना है, उससे अधिक आपको संभालना है। क्योंकि मुझ पर भरोसा रखकर तो आपने मेरे साथ उनका संवंध वाधा है। मैं उन्हें यही कहने यहाँ आती हूँ कि मेरे लिये पहले मम्मी है, वाद में आप। इसमें हमें अकेले वाहर घूमने जाने की वात ही कहाँ रहती है?

श्रद्धा,

१६

अपनी पुत्री के इन सस्कारों की बात करते हुए
उसके पिता मेरे पास रो पडे।
'महाराज साहेब, पिछ्ले जन्म में मैंने परमात्मा की
उपासना अच्छी तरह से की होगी, उसीके प्रभाव से
अमेरिका में रहने पर भी मेरी बेटी ऐसे सुंदर संस्कार
टिका पायी है। आप मानें या न मानें,
मेरी पुत्री ने जबसे अपनी सासु से यह बात की है, तबसे
मेरे घर उसकी सासु के रोज कम से कम पॉच फोन आते हैं।
एक बार तो मैंने उन्हें हॅसते-हॅसते कह भी दिया कि
'अभी तक तो मेरी बेटी आपके घर आयी भी नहीं, उससे पहले
ही उस पर इतनी ममता क्यों?'
आप जानते हैं, उन्होंने क्या जवाब दिया?
उन्होंने मुझसे इतना ही कहा कि
'मे आपके घर रोज पॉच-पॉच फोन आपकी बेटी के
मुख से 'मम्मी' शब्द सुनने के लिए ही करती हूँ,
इसके सिवाय फोन करने का अन्य कोई प्रयोजन नहीं।'
वे आगे कुछ बोल नहीं पायीं।

श्रद्धा,
उस अमेरिकन युवक की बेटी की विचारधारा व वर्तन के
साथ अपनी स्वय की विचारधारा व वर्तन की तुलना करना।
तुमने दर्शन से उसकी मम्मी के सामने ही कह दिया है कि
'मैंने आपसे शादी की है, आपकी मम्मी के साथ नहीं।
मे आपका सब काम करुँगी, परन्तु मम्मी का एक भी काम
नही करुँगी,' जबकि इस पुत्री ने अपनी सासु से कह दिया है,
'मुझे इनसे भी ज्यादा आपकी सेवा करनी हे, क्योंकि मेरे भरोसे
तो आपने मेरा संबंध इनके साथ बांधा है। मेरे लिये 'ये' बाद
में हे, आप पहले हैं।' क्या तुम्हें नहीं लगता कि उस युवती के
सामने ऑख ऊँची करके देखने की योग्यता भी तुम गॅवा बेठी हो?

उस युवती के हृदय की उत्तमता के आगे पर्वत
का शिखर भी बौना है, तो तुम्हारे हृदय की क्षुद्रता
के आगे गंदे नाले की दुर्गन्ध भी बेहतर है।
उस युवती ने शादी से पहले ही सासु को 'मम्मी'
बनाकर उनके घर में 'पुत्री' के रूप में अपना स्थान
मजबूत बना दिया है, तो तुमने शादी के बाद भी सासु
को सासु ही रहने देकर उनके दिल में स्वयं के लिये
'पुत्री' का भाव पैदा होने की सभावना पर चौकड़ी मार दी है।
और तुम मुझे पूछ रही हो कि सासु को 'मम्मी' मानने के लिये
बहू तैयार हो, तो सासु को भी बहू को 'बेटी' मानने के लिये
तैयार होना चाहिये न?

श्रद्धा,
छोडो ये सब क्षुद्र गणित।

धरती भीगी बनती है आकाश के बादल से,
तो आकाश में बादल बनते हैं सागर से।
पेट भरता है अन्न से,
तो अन्न का सर्जन होता है किसान से।
शिष्य पर गुरु का उपकार है,
तो गुरु पर परमात्मा का उपकार है।
स्त्री पर अपने पति का एहसान है, तो
पति पर एहसान उसके माता - पिता का है।

इसका तात्पर्यार्थ स्पष्ट है।
धरती को बादल के साथ सागर को भी संभाल लेना चाहिये।
इन्सान को अन्न के साथ किसान को भी अपना लेना चाहिये।
शिष्य को गुरु के साथ परमात्मा को भी अपने हृदय में प्रतिष्ठित
करना ही चाहिये।
बस, इसी न्याय से
स्त्री को अपने पति के साथ अपने सासु-ससुर को भी सभाल
ही लेना चाहिये। मेरे इस सूचन पर गभीरता से विचार करना।

महाराज साहेब,

१७

आपके पिछ्ले पत्र का जवाब आज पाँचवें दिन
लिख रही हूँ। क्या लिखुँ और कहाँ से लिखने की
शुरूआत करुँ, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा।
फिर भी आपसे इतना जरूर कहुँगी कि आपके पिछ्ले पत्र
के बाद चार दिन में मेरे घर में स्वर्ग का वातावरण खडा हो
गया है। आपके पास अमेरिका से आये हुए युवक ने
अपनी पुत्री के संस्कार की जो बात की और यह बात आपने
मुझे बतायी, वह पढकर मैं हिल गयी। रात को एकान्त मिलते
ही वह पत्र मेंने तीन बार पढा। आँखों में से आँसू बहने
शुरू हुए, तो रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे।
मेरी यह स्थिति देखकर दर्शन तो स्तब्ध हो गये।
उन्होनें मुझसे पूछा.. 'तुझे क्या हुआ है, यह तो बता।
मेंने उनके हाथ में आपका पत्र थमा दिया।
उन्होंने शीघ्रता से पत्र पढ लिया। पत्र पढने के बाद उन्होनें
मेरे सामने देखा। मैं सिहर उठी। उनकी आँखों से आँसू
बह रहे थे। मेंने पूछा-'आप क्यों रो रहे हैं?'
'श्रद्धा, में तेरे मुँह में ये शब्द स्थान लें, यह देखना चाहता हूँ।
में तुझे कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि में तुझसे डरता हूँ।
में मम्मी से कुछ नहीं कह सकता,
क्योंकि मुझ पर उसके अनन्त उपकार हैं।
तुम दोनों के बीच मेरा कचूमर निकल रहा है।
**मुझे सतत ऐसा ही लगता है कि या तो मम्मी को
मुझे गर्भ में आते ही रवाना कर देना चाहिये था,
या फिर मुझे खून करके तुझे परलोक में रवाना
कर देनी चाहिये थी।**
श्रद्धा, यदि मम्मी के साथ तेरा वर्तन ऐसा ही रहा,
तो शायद मे पागल हो जाऊँगा अथवा
तो मेरे दिमाग की नसें फट जायेगीं।'

महाराज साहेब,
मैंने दर्शन के मुँह पर हाथ रख दिया।
आगे बोलने ही नहीं दिया। मैंने उनसे इतना ही कहा,
'मुझे अभी के अभी मम्मी के पास जाना है।'
'परन्तु अभी तो रात के ग्यारह बज गये हैं। मम्मी सो गयी होगी।
तुझे जो बात करनी हो, वह सुबह में करना।'
'नहीं, मुझे अभी जाना है। मम्मी सो गयी हो, तो उठा देना।
मैं कल तक राह नहीं देख सकुँगी।'
दर्शन ने मम्मी के कमरे का दरवाजा खटखटाया।
आँख मसलते हुए मम्मी ने दरवाजा खोला। हम दोनों को
साथ में देख मम्मी के मन में आशंका जन्मी।
'क्यों, क्या हुआ है तुम दोनों को? अभी अचानक कैसे आना हुआ?'
मम्मी के इतना कहते ही मैं दोडकर मम्मी के गले लग गयी।
मम्मी कुछ समझ पाये, इससे पहले तो मैंने अपना सर उनके कंधे
पर ढाल दिया। मैं सिसकियाँ भरकर रोने लगी। मम्मी का
वात्सल्यमय हाथ मेरे हाथ को छूकर मेरे सर पर फिरने लगा।
'बोल बेटी, तुझे क्या हुआ है? 'बेटी शब्द सुनते ही मैं हिल गयी।
जो शब्द सुनने के लिये मैं आज तक तडप रही थी,
वह शब्द सुनते ही मैं मम्मी से और अधिक चिपक गयी।
'मम्मी, इस घर में आप मुझे दूसरा कोई स्थान दें या न दें,
परन्तु आपके मुँह से जो 'बेटी' शब्द निकला है, वह स्थान
मेरा हमेशा के लिये रखना। मम्मी, मैं आपकी बहू नहीं,
परन्तु बेटी हूँ। मैं आपकी ही बेटी हूँ, आपकी ही बेटी हूँ।'
महाराज साहेब,
मम्मी मेरे आँसू पोंछ रही थी, मैं मम्मी के आँसू पोंछ रही थी
और आपका भक्त दर्शन यह विरल दृश्य देखकर रो रहा था।
स्वर्ग में अमृत के झरने बहते हैं या नहीं, यह तो मुझे नहीं पता,
परन्तु उस रात के ग्यारह बजे हम छहों की आँखों से बहे हुए आँसूओं
के आगे अमृत को भी शर्माना पड़ा होगा, इसमें कोई शंका नहीं।

श्रद्धा,



तुम्हारे पत्र ने मेरी ऑखों को भी अश्रुसभर बना दिया।
पत्र पढते हुए कम से कम तीन बार मेरी ऑखों में से
अश्रु टपक पडे। पल भर के लिये तो मैं अवाक् हो गया।
तुम्हें जितने धन्यवाद दुँ, कम हैं।
तुमने अपने अहं की अवगणना करने का जो प्रचंड सत्त्व
दिखाया और बुद्धि को एक तरफ धकेलकर प्रेम को खुला
मेदान दे दिया, उसने सचमुच तुम्हारे घर में स्वर्ग उतार दिया है।
तुमने तो कमाल कर दिया।

पुरुष जो कुछ पाता है, संघर्ष करके ही पाता है,
झगड़कर ही पाता है,
परन्तु स्त्री जो कुछ पाती है, सहन करके ही पाती है,
झुककर ही पाती है।

यह उक्ति तुमने चरितार्थ कर दिखायी है।
हृदय में प्रतिष्ठित हुए अहं को सिहासन पर से उतारने के लिये
तुम्हारे द्वारा दिखाये गये प्रचड पराक्रम की प्रशंसा करने के लिये
मेरे पास कोई शब्द ही नहीं। अभी मुझे किसी कवि की पक्तियॉ
याद आ रही हैं, जिनका तात्पर्यार्थ इस प्रकार है. .

'स्वयं की बांसुरी स्वयं बजाकर बहा दे सूर।
पकडनेवाला उसे पकड ही लेगा, चाहे पास ही हो या दूर;
सुन्दर सलोने सढ किसीके क्या काम के,
स्वय के तुबडे से तिरें। हृदय में उगे ऐसी हृदय की बात को
फूल की तरह सुगन्ध से करें।'

श्रद्धा,

तुमने अपने हृदय की गहराई में दबे हुए प्रेम को बाहर लाकर
सचमुच सारे घर में प्रसन्नता का वातावरण पैदा कर दिया है।
फिलहाल तुमसे इतना ही कहुँगा कि प्रेम के जिस माध्यम से
तुम्हारे जीवन में व तुम्हारे घर में इस चमत्कार का सर्जन हुआ हे,
उस प्रेम की देखभाल करने में तनिक भी पीछे मत हटना।

क्योंकि प्रेम तो केले के तार से भी पतला है,
छोटा - सा आघात लगते ही उसका अस्तित्व खतरे में!
प्रेम से बननेवाले संबंधों में मिठास ज़रूर होती है,
परन्तु छोटा - सा भी अपेक्षाभंग इस मिठास को
कडवाहट में रूपान्तरित कर दे इसकी पूरी संभावना है।
बुद्धि के माध्यम से पैदा होनेवाले संबंध अपेक्षाभंग
से टूट ही जायें, ऐसा शायद नहीं भी होता,
परन्तु प्रेम से संबंध पैदा होते हैं,
बाद में दोनों पक्षों में अपेक्षायें बढती ही जाती हैं।
और ये सब अपेक्षायें पूर्ण ही हों,
ऐसा भी करीब-करीब नहीं होता।
और जहाँ अपेक्षायें टूटती हैं, वहाँ दोनों को 'सामनेवाले व्यक्ति
का प्रेम मुझ पर कम हो गया है' ऐसा लगने लगता है।
श्रद्धा,
एक बार का, सासु-बहू का संबंध अब जब माँ-बेटी के
संबंध में रूपान्तरित हो रहा है,
तब मैं तुमसे यही कहुँगा कि खूब सावधान रहना।
**प्रेम मालिकीभाव रूप न बन जाय, इसकी खास
सावधानी रखना। विचार की अपूर्णता व प्रेम की
न्यूनता, ये दोनों परिबल घर्षण के ही जनक हैं;
इस वास्तविकता को नज़र के समक्ष रखकर इन
दोनों परिबलों से स्वयं को हो सके उतना बचाती रहना।**
'फिर जो मजा आयेगा, बहुत सही मजा आयेगा;
मरीज, एक ही शर्त है कि छोड दें अधिकार।'
किसी शायर द्वारा लिखी गयी इन पंक्तियों को लक्ष्य में
रखकर तुम्हें मिले हुए अधिकारों का उपयोग कर लेने की
तत्परता से स्वयं को हो सके उतना दूर रखना।'
संबंधों को टिकाये रखने के लिये यह चुनौती स्वीकारने
के सिवाय अन्य कोई विकल्प ही नहीं।



महाराज साहेब,
संबधों को टिकाये रखने के विषय में आपने जो अनमोल मार्गदर्शन दिया, उसके लिये आपकी में आभारी हूॅ। आपकी बात एकदम सच है कि **जिसके प्रति प्रेम है, वहाँ अपेक्षा खूब बढ़ जाती हैं और सारी अपेक्षायें पूर्ण नहीं होतीं, यह वास्तविकता है।**
यदि ऐसे समय में दिल साबूत न हो, तो
संबंध टूटने में पल-भर की भी देर नहीं लगती।
इस मामले में मैं सावधान तो रहॅुंगी ही, परंतु इसके बारे में आपसे मैं एक छोटी-सी बात पूछ्ना चाहती हूॅ कि करीब-करीब हर घर में सासु की ओर से बहू पर कई प्रकार के नियंत्रण रखे जाते हैं। 'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, वैसा नहीं करना चाहिये, ऐसा नहीं बोलना चाहिये, वेसा नहीं बोलना चाहिये, तुम्हें ऐसे कपडे नहीं पहनने चाहिये, वेसे कपडे नहीं पहनने चाहिये, देर रात तक बाहर घूमने नहीं जाना चाहिये, सुबह में देर तक सोते नहीं रहना चाहिये, अपरिचित पुरुषों के साथ ज्यादा बात नहीं करनी चाहिये, तो परिचित पुरुषों के साथ भी बहुत हॅस-हॅसकर बात नहीं करनी चाहिये।
सक्षेप में कहा जाय, तो
ऐसा एक भी घर बाकी नहीं होगा, जिस घर में सासु ने बहु पर ऐसे ठिकाने बिना के व नये जमाने के दिमाग में न वैठनेवाले विभिन्न प्रकार के नियंत्रण न लादे हों। नियंत्रणों की बात में आपको इसलिये बता रही हूॅ कि इन नियंत्रणों ने ही सासु-बहू के बीच के संबंधों में दरार पैदा की है। बहू को सतत यही महसूस हुआ करता है कि 'मैं कोई नन्ही-सी मुन्नी नहीं कि मुझे इतने सूचन करने पडें। स्वय को संभालने की मुझमें पूरी क्षमता है और समझदारी भी है। फिर भी मेरे सर पर ऐसे नियंत्रण क्यों? मेरी स्वयं की ही बात करॅु, तो मेरे लिये भी यह समस्या पहले भी थी व कुछ अंशो में आज भी है।

सासु के साथ आत्मीयता का संबंध ज़रूर बन गया है, परन्तु आज भी उनकी ओर से थोपे जानेवाले नियंत्रण मेरे लिये दुःखद बन रहे हैं।

कभी-कभी तो मन में भय भी सताया करता है कि इन नियंत्रणों के सामने मेरा मन विद्रोह तो नहीं कर बैठेगा न? बगावत की यह वृत्ति पुनः सासु के साथ घर्षण तो नहीं करायेगी न?

अभी-अभी घटी एक ताजी घटना की बात करूँ?

नवरात्रि के दिन नजदीक आ रहे थे।

नौ दिन दांडिया खेलने के लिये मैंने अलग-अलग पोषाकें पिछले साल ही सिलायी थीं।

आप तो संयम जीवन स्वीकार कर बैठे हैं, इसलिये आपको क्या पता कि इन दिनों में कैसा मजा आता है? इन दिनों का मजा लूटने के लिये युवक-युवतियों के पाँव कैसे नाचते हैं! संगीत की ताल पर व सूरों के संग दांडियारास खेलने के लिये वे कितने तडपते हैं!

ऐसी ही उमंग मेरे मन में भी थी, परन्तु ज्यों ही सासु को मेरी दांडियारास की तैयारी का पता चला, उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, बेटी!

बहुत खेल चुकी हो दांडियारास, अब न जाओ, तो नहीं चलेगा? रात की नींद बिगाडना, शरीर बिगाड़ना, पैसे बिगाडने व समय बरबाद करना। तू तो बहुत समझदार है। कब तक ऐसा बचपना चालु रखेगी?

महाराज साहेब! सासु की यह सलाह मेरे गले न उतरी। मैंने उन्हें साफ इन्कार कर दिया।

हालाँकि, मेरे इन्कार में नम्रता थी। सासु भी शान्त हो गयीं। परन्तु मुझे एहसास हुआ कि यह ठीक नहीं हुआ। हाँ, आज नवरात्रि के दिन पूर्ण भी हो गये हैं, फिर भी चाहती हूँ कि इ विषय में आपकी ओर से कुछ ठोस मार्गदर्शन मिले।

श्रद्धा, २०

दर्शन ने मुझे एक बार बताया था कि तुम कार चलाने में माहिर हो। में तुमसे यही पूछना चाहता हूँ कि तुम कार चला रही हो, उस समय अचानक सडक पर रहा हुआ सिग्नल लाल लाइट दिखाये, तो तुम कार रोक देती हो या आगे जाने देती हो? लाल लाइट दिखानेवाले उस सिग्नल को तुम मित्र मानती हो या शत्रु? वह लाल लाइटवाला सिग्नल वास्तव में तुम्हें बचाने के लिये गिरता है या खत्म करने के लिये? तुम्हारा जवाब यही होगा कि लाल सिग्नल पडते ही मे मेरी गाडी रोक ही देती हूँ; क्योंकि मुझे आगे बढने से रोकने में उसका कोई स्वार्थ नहीं, सिवाय कि मेरी सलामती।
वह सिग्नल तो सिर्फ इतना ही सूचित करता है कि फिलहाल आगे बढने में खतरा है। इसीलिये मैं उसे दुश्मन तो कैसे मानुँ?
बस, श्रद्धा, में तुम्हें यही कहना चाहता हूँ।

उपकारियों की ओर से किये जानेवाले निषेधों में व उनके द्वारा रखे जानेवाले नियंत्रणों में जिस आश्रित को लाल सिग्नल दिखता है और उनके इशारे को अमल में लाकर जो आश्रित इस दिशा में आगे बढ़ने से रुक जाता है, वह अपने जीवन को, अपने जीवन की पवित्रता को, अपने जीवन के सदगुणों को सुरक्षित रखता है।

और जिसे ये निषेध व नियंत्रण खटकते हैं, जिसे उनमें 'दुश्मन' के दर्शन होते हें उनकी परवाह किये बिना जो आगे बढ जाता है, वह जाने-अनजाने अपने जीवन को बरबादी की राह पर ले जाता हे।
तुम कम्प्यूटर इजीनियर हो न? तुम्हारी बुद्धि धारदार हे न?
तो में तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ, तुम शान्ति से उसका जवाव देना।
सपत्ति देखते ही पुरुष के मन में कौन-सा विचार आता हे?
एक ही विचार, उसे हासिल करने का, उसके मालिक वनने का व खर्च करने का। इसी तरह एक नवयुवती के शरीर को देखते ही उसको ऐसा ही विचार आता हे।

जवान स्त्री के शरीर पर नजर पडते ही उसके
मन में उस शरीर को पाने के व उपभोग करने
के विचार नृत्य करने लगते हैं। शायद मेरे इस विधान
में तुम्हें अतिशयोक्ति के दर्शन होते होंगे,
परन्तु मेरे परिचय में आए हुए सैकडों नहीं,
हजारों नौजवानों ने अपने मुख से अपनी इस मनोदशा का बयान
किया है। युवती के शरीर के प्रति उनकी भिखारी नजर को नहीं,
परन्तु शिकारी नजर को लक्ष्य में रखकर मैं तुमसे यह बात करता
हूँ कि पुरुष की, उसमें भी खास करके जवान पुरुष की नजर से
तुम्हें दूर रखने के जो भी निषेध या नियंत्रण तुम पर वडिलों की
ओर से रखे जायें, उनकी अवगणना करने का दुःसाहस तुम हर्गिज
मत करना। पिछले पत्र में तुमने नवरात्रि के दांडियारास की जो बात
की, उसके बारे में मैं तुम्हें क्या लिखुं? अखबारों में भी ऐसे
समाचार चमकते हैं कि 'नवरात्रि के बाद तीन-चार महीनों में
गर्भपात का प्रमाण भयजनक संख्या को लांघ गया है।'
इसका अर्थ तुम न समझ सको, ऐसा मैं नहीं मानता।
श्रद्धा,
तुम स्वयं अपने अंतःकरण से पूछ लो न?
नवरात्रि के दांडियारास में तुम्हारे द्वारा अनुभूत आनद की कक्षा
कौन-सी थी? तुम अपनी सखी के साथ दांडिया खेली थी?
किसी प्रौढ पुरुष के साथ तुम दांडिया खेली थी? तुम अपने
सगे भाई के साथ दांडिया खेली थी? सूरज की रोशनी में
दांडिया खेली थी? नहीं, अंधकार में, जवान पुरुषों के साथ,
उत्तेजक गीतों की लय के साथ, मादक वातावरण में, विभत्स
हावभाव के साथ तुम दांडिया खेली थी। स्वय को दगा मत देना।
वासना के नग्न नृत्य को 'आनन्द' का नाम देकर वुजूर्गों को
नीचा दिखाने का अधम कृत्य कभी मत करना।

**पुरुष अपनी संपत्ति खुली नहीं छोड़ता, तो फिर
स्त्री को भी अपना शरीर क्यों खुला रखना चाहिये?**

महाराज साहेब,



आपका निदान सही है,
आपका अनुमान सही है,
आपका बयान सही है।
नाम दांडियारास का, परन्तु उसके पीछे रही हुई वृत्ति सिर्फ वासना को बहलाने की ही। हालॉकि, आपके पिछले पत्र पर गंभीरता से विचार किया, तब यह ख्याल आया कि इस वास्तविकता को समझने में मैं आज तक भूल कर बैठी थी।
ऐसा लगता है कि आज के युवक-युवती ऐसा रोज करना चाहते हैं, परन्तु रोज नहीं हो सकता, इसीलिये ऐसे त्यौहारों के बहाने अपनी वासनावृत्ति का पोषण करते हैं।
खैर, मेंने दुनिया को सुधारने का कोई ठेका नहीं लिया हे, स्वयं को सुधार लुं, तो भी काफी हे।
आपको शायद यकीन नहीं आएगा कि आपके पिछले पत्र के बाद मैंने स्वयं मम्मी के पास जाकर दांडियारास न खेलने जाने की उनकी सलाह की अवगणना के लिये माफी मांगी व मेंने उन्हें वचन भी दे दिया है कि

लाल लाइट देखकर कार को आगे बढ़ने से रोकने के लिये मन जितनी सहजता से तैयार हो जाता है, उसके लाखवें भाग की सहजता से भी मन वडिलों के निषेध व नियंत्रणों के आगे रुकने के लिए तैयार नहीं होता।

और इसी कारण से सतत बडों के साथ छोटों का संघर्ष जारी हो रहता है। यदि उनकी सलाह पर अमल करें, तो स्वयं का मन सतत बेचैन रहा करता है और यदि उनकी सलाह की अवगणना करें, तो उनका मन सतत बेचैन रहा करता है। इस दुःखद स्थिति को दूर करने का कोई श्रेष्ठ विकल्प है?

श्रद्धा,

एक छोटी-सी वास्तविकता आँख के समक्ष रखना कि

छत्री का काम भीगने से बचाने का है, तो

छत्र का काम बिगड़ने से बचाने का है।

मुसलाधार बारिश बरसती हो, उस वक्त छाते को दूर रखनेवाला भीगे बिना नहीं रहता, तो आत्मा को बिगाड़नेवाले ढेर-सारे निमित्त चारों ओर हों, तब अपने सिरछत्र की सलाह की अवगणना करनेवाला स्वयं की आत्मा को बिगाडे बिना नहीं रहता। और एक दूसरी बात,

निषेध व नियंत्रण जिसे अच्छे नहीं लगते, वह व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में स्वयं को या स्वयं की शक्ति को सलामत रख सकता है भला?

करोडपति बनने की इच्छा रखनेवाला पुत्र, गुंडों के साथ दोस्ती न करने के पिता के निषेध की परवाह न करे तो?

परीक्षा में प्रथम स्थान पाने की इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी, शिक्षक के टी.वी. न देखने के निषेध की ऐसी-तैसी करने लगे तो?

पवित्रता को बचाने की चाह रखनेवाली पुत्री, बदमाश युवकों की नजर में न चढ़ने के मम्मी के निषेध को हँसी में उडा दे तो?

मैच जीतने की इच्छा रखनेवाला क्रिकेट टीम का कप्तान शराब न पीने के कोच के नियंत्रण की मजाक उडाने लगे तो?

तंदुरस्ती चाहनेवाला सर्दी-जुकाम का मरीज, डॉक्टर के दही न खाने के सूचन की अवगणना करने लगे तो? जीवन की सलामती चाहनेवाला इन्सान, कौमी दंगों के वक्त सरकार की ओर से घोषित हुई धारा १४४ का भंग करे तो?

नहीं, इसमें कोई छूटछाट नहीं चलती। निषेध व नियंत्रणों को स्वीकारकर उन पर अमल करना ही पडता है।

श्रद्धा, बस यही बात बडों की ओर से रखे जानेवाले निषेधों व नियंत्रणों के बारे में समझ लेना। आग की आकर्षक ज्वाला देखकर उसके पास जाने को तत्पर हुए बच्चे को मना करनेवाली मम्मी वास्तव में उसकी हितकांक्षिणी ही है, फिर भी करुणता यह है कि बच्चा मम्मी को हितकांक्षिणी नहीं मानता। मेरा कहने का तात्पर्य समझ गयी न?



महाराज साहेब,

मुझे लगता है कि शिक्षण के क्षेत्र में कम्प्यूटर
इंजीनियर बनना फिर भी शायद आसान है,
परन्तु जीवन के क्षेत्र में संस्कारी बने रहना तो अति
मुश्किल है। पिछले पत्र में निषेध व नियंत्रण के विषय
में आपने मुझे जो समझ दी है, वह इतनी जबरदस्त है
कि उसके बारे में आपकी बात का विरोध करने के लिये
मेरे पास कोई दलील नहीं, फिर भी यह चालबाज मन?
वह सतत यही समझाया करता है कि व्यवसाय के क्षेत्र में,
क्रीडा के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में निषेध-नियत्रणों की बात
ठीक है, परन्तु मौजमजा करने की उम्र में निषेध-नियत्रणों
की बात ठीक नहीं। छोटों को अपने प्रति सद्भाव टिकाये रखने
के लिये बडों को उन पर निषेध-नियंत्रण रखने के अपने
शौक (?) पर ब्रेक लगा ही देना चाहिये।
मन की इस चालबाजी का क्या किया जाय?

श्रद्धा,

इतना ही कहूँगा कि

मन की दुनिया में बड़ा से बड़ा कारागृह है - गलत धारणा का।

दिल्ली की तिहाड जेल तोडकर भागने की बहादुरी दिखाना
शायद आसान है, परन्तु मन की गलत धारणा की जेल को
धराशायी करने के लिये तो जबरदस्त पराक्रम दिखाना पडता है।
मै चाहता हूँ कि तुम यह पराक्रम करके ही रहो,
नहीं तो तुम्हारा जीवन छिन्न-भिन्न हो जाएगा। क्योंकि
इन्सान दूसरों के अकुश में न हो, यह इतना जोखिमी नहीं,
परन्तु खुद का मन ही अपने अकुश में न हो,
यह तो भारी जोखिमी बात है।
गलत धारणा की यही तो दिक्कत है।
मन सतत अपने अभिप्राय बदलता ही रहता है।

अभिप्राय बदलने में वापिस उसकी चतुराई यह है
कि प्रत्येक बदलते हुए अभिप्रायों से स्वयं की
धारणा अधिकाधिक पुष्ट होती ही रहे।
पढी हैं किसी कवि की पंक्तियॉ,
जिनका तात्पर्यार्थ इस प्रकार है?
'अगम-निगम के भेद उकेलें, जानी मैंने कई बातें,
ओ मन! मेरी बुद्धि की कसम, तू ही समझ नही आता।'
हॉ, दुनिया भर की समस्यायें हल करने की ताकत
रखनेवाला मन, स्वयं ही समस्याओं का सर्जक है,
यह बात भले-भले बुद्धिमान भी नहीं जानते।
**दूध लाने के लिये बिल्ली को नहीं भेजा जा सकता,
यह सब जानते हैं, परन्तु जीवन की व संबंधों की
जटिल समस्यायें हल करने के लिये मन की सलाह
नहीं ली जा सकती, यह बात करीब-करीब कोई
नहीं जानता।**
मैं तुम्हें साफ चेतावनी देता हूँ कि
प्रेम की उत्कटता ने घर में जब स्वर्ग का वातावरण
पैदा किया है, तब इस वातावरण को तीक्ष्ण वुद्धि के
हवाले सौंप देने की गलती तुम हर्गिज मत करना।
दूध स्वादिष्ट बना हो चीनी से व
हम उसकी गुणवत्ता जॉचने का काम नमक को सौंप दें,
यह मूर्खता है, तो सासु को 'मम्मी' वनाने का काम प्रेम ने
किया हो और अव तुम बुद्धि को काम में लगाकर
'मम्मी' के वचनों का पोस्टमार्टम
किया करोगी तो यह तुम्हारी सरासर मूर्खता होगी।
ऐसी मूर्खता कि
जिससे होनेवाले नुकसान की भरपाई करने के लिये तुम्हारे
तमाम ऑसूओं का स्टॉक भी कम पडेगा।
नहीं, इस राह पर अनजाने में भी कदम मत रखना।

महाराज साहेब,

२३

सही वक्त पर एकदम सही मार्गदर्शन देकर आपने मुझे बहुत बडे नुकसान में से उबार लिया।
नहीं तो बडी मुश्किल से घर में बने प्रसन्नता के वातावरण में जाने-अनजाने भी मेरे द्वारा क्लेश की चिनगारी रख दी जाती, क्योंकि मुझे यह पता ही नहीं था कि प्रेम से बने संबध प्रेम से ही टिकते हैं। मैं तो यही मानती थी कि एक बार सबध बन जायें, उसके बाद उन्हें टिकाये रखने की जवाबदारी जितनी अपनी है, उतनी ही सामनेवाले व्यक्ति की भी है। और

जहॉ जवाबदारी सामनेवाले व्यक्ति की मानी जाती है,
वहॉ बुद्धि का हिसाब-किताब शुरू हो जाता है और
बुद्धि के हिसाब-किताब का ही अर्थ है -
संघर्षो का सर्जन।

आपकी में बहुत आभारी हॅू कि आपने मुझे बुद्धि को जीवन की लगाम न सोंप देने की हितकारी सलाह दी। मैं आपकी सलाह पर अमल करने के लिये प्रयत्नशील जरूर बनॅुगी, फिर भी आपसे एक प्रश्न पूछॅु? जवानी को बुद्धि का फॉका हो और इस कारण से वह उपकारियों के साथ कई बार संघर्ष में उतर जाती हो, यह बात तो समझ में आती है, परन्तु बडों के पास तो अनुभवों का खजाना होता है। सारे कुटुब को जोडकर रखनेवाले प्रेम की ताकत वे बराबर जानते हैं, फिर भी वे भी आश्रितों के साथ अपने व्यवहार में बुद्धि को ही क्यों चालकबल बनाते होंगे? बुद्धि के माध्यम से ही वे आश्रितों की परीक्षा क्यों करते होंगे?

श्रद्धा,

इसीलिये कि आश्रितों के पास बडों की प्रेम की भाषा समझने की अक्ल नहीं होती। बडों की ऑखों में उमडते हुए प्रेम के महासागर को निरखने जैसी दृष्टि उनके पास नहीं होती। बडों के मुख पर अठखेलियॉ करती हुई प्रेम की रेखा को समझ

पाने जितनी प्रज्ञा उनके पास नहीं होती।
बहू के प्रति सासु के सहृदयतापूर्ण व्यवहार की एक
रोमहर्षक सत्य घटना सुनना चाहोगी?
वह है वालकेश्वर, मुंबई के धनाढ्य परिवार की पुत्रवधू।
कभी-कभार वह साड़ियाँ खरीदने जाती है भूलेश्वर।
करीब तीस वर्ष पहले की यह घटना है।
एक बार वह भूलेश्वर की एक दुकान में साडियाँ खरीदने गयी।
दुकानदार साडियाँ बताने लगा।
'यह है ७० की, यह है १०० की, यह है १५० की।'
'कुछ कम दामवाली साड़ी बताओगे?'
यह है ६५ की, यह है ५५ की, यह है ५० की।'
'इससे भी कम दाम की साडी नहीं?'
'एक काम करो। माँ को लेकर आना। बाद में कम
दाम की साडी बताऊँगा।'
व्यापारी इस महिला की सासु के उदात्त स्वभाव को बराबर
जानता था, इसीलिये उसने बहू से कहा
था माँ को साथ ले आना। दूसरे दिन शाम के वक्त सासु-बहू,
दोनों व्यापारी की दुकान में आयीं। व्यापारी साडियाँ दिखाने लगा।
'यह है १५० की, यह है १७५ की, यह है २०० की।'
'इससे कीमती साडी नहीं?'
'हाँ, है न! लीजिये, यह है २५० की, यह है ३७५ की।'
'एक काम करो, ३७५ की दो साड़ियाँ दे दो।'
'परन्तु माँ! मेरी सुनो तो सही।' बहू ने सासु से कहा।
'क्या है?'
'इतनी महंगी साडी की मुझे आवश्यकता नहीं, क्योंकि मुझे तो
घर में पहनने के लिये साडी चाहिये।'
'३७५ की साडी घर में पहनो ना?'
श्रद्धा, तुम जिसकी कल्पना भी न कर सको, ऐसी
वास्तविकता की बात है अगले पत्र में!

श्रद्धा,



'३७५ रु की साडी घर में पहनना', सासु की यह वात सुनकर बहू स्तब्ध हो गयी, उसने सासु से कहा .
'परन्तु मॉ। रसोईघर में रसोई बनाते वक्त ऐसी कीमती साडी पहनुं?'
'सुन, इस साडी के जो ३७५ रु देने हैं, वे न तो मैं कमाने गयी थी, न ही तू कमाने गयी थी। मेरा बेटा धंधा करता है और पेसे कमाता है। पैसे जाते हैं, तो उसके जाते हैं। इसमें तुझे या मुझे किसीको विचार करने की जरुरत नहीं। तू खुशी से पहनना यह साडी। वैसे भी तुझे अच्छी साडी में देखती हूँ, तब मुझे आनन्द होता है और ऐसा लगता है कि इस घर में मैंने सचमुच तुझे पुत्री का स्थान दिया है।'
इतना कहकर सासु ने बहू को चुप कर दिया व ७५० रु चुकाकर दो साडियॉ लेकर चली गयी।

श्रद्धा,
सासु के दिल की इस विशालता की तुम कल्पना कर सकती हो?
सासु के इस उदात्त स्वभाव की तुम कल्पना कर सकती हो?
सासु के मन की ऊँचाई की तुम कल्पना कर सकती हो?
क्या तुम ऐसा मानती हो कि
इसमें सासु का कोई निजी स्वार्थ था?
सासु की इस बात में कोई दंभ था?
सासु के इस व्यवहार में कोई विशिष्ट प्रयोजन था?
नहीं, उस सासु के पास निर्दभ दिल था,
वात्सल्यसभर हृदय था, पवित्र व निर्मल मन था।
मैंने इस सासु को मेरी ऑखों से देखा है। उनके मुख में से निकले हुए मीठे-मधुर शब्द मैंने मेरे कान से सुने हैं। उनके उदात्त स्वभाव की भरपेट प्रशसा उनके समस्त परिवार के मुख से मैंने सुनी है। अपने-पराये के बीच कोई भेदभाव न रखता हुआ उनका वात्सल्य मैंने स्वयं निहारा है।

कल्पना तो करो, ऐसी प्रेममयी सासु को पाने के बाद बहू के हृदय में उस सासु के प्रति सागर की विराटकाय लहरों को भी शर्मा दे, ऐसा सद्‌भाव नहीं उछलता होगा? इसमें कोई शंका नहीं, फिर भी सुननी हे तुम्हें इस सद्‌भाव की बात? तो सुनो। वर्ष में तीन महीनों तक अमेरिका, लंडन, जर्मनी, जापान आदि देशों में व्यवसाय हेतु घूमते हुए पति से पत्नी ने कह दिया 'देखिये', जब तक मॉ मोजूद है, तब तक आप मुझे आपके साथ विदेश चलने का आग्रह मत कीजियेगा। हॉ, इस जवानी में मुझे विदेश घूमने का शौक नहीं, ऐसा नहीं कहती, परन्तु मेरे लिये घूमने-फिरने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है मॉ की चित्तप्रसन्नता। और इस बात में तो आप भी मेरे साथ सम्मत होंगे कि आपको प्रसन्न रखना मेरे लिये इतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना महत्त्वपूर्ण है - मॉ को प्रसन्न रखना। क्योंकि आपकी सेवा तो मुझे जिदगी भर मिलने ही वाली है। परन्तु मॉ की सेवा कब तक? वह तो पक्का पान है। वृद्धावस्था ने उनके शरीर पर कब्जा जमा लिया है। कई बार उनका शरीर रोगग्रस्त बन जाता है। इस स्थिति मे मैं उन्हें न संभालकर आपके साथ विदेश में घूमती रहुँ, तो मेरी मॉ के द्वारा दिये गये सस्कारों का क्या? शादी के बाद बिदाई के वक्त मेरे पप्पा ने जो मंगल आशीर्वाद दिये थे कि 'बेटी! दूध में शक्कर घुल जाती है, इसी प्रकार तू उस घर में सबसे घुल-मिल जाना', उस आशीर्वाद का क्या? 'मेरे एक भी प्रकार के गलत बर्ताव की आपको कभी कोई शिकायत नहीं सुननी पडेगी', ऐसा जो वचन मैंने मेरे मम्मी-पप्पा को दिया था, उसका क्या?

घर से बाहर जाकर आपको पैसे कमाने हों, तो कमाईयेगा। मैं तो घर में रहकर माँ की सेवा करके उनके दिल के आशिष ही पाऊँगी।

श्रद्धा, इस बहू के साथ स्वयं की तुलना करो, ऑखें बरस पडेंगी।

महाराज साहेब,



ज्यों-ज्यों आपका पत्र पढती गयी, त्यों-त्यों मेरी ऑखों में से अश्रू टपकने लगे। वैसे तो मैंने आज तक आप द्वारा मुझ पर लिखे गये सब पत्र संभालकर रखे हैं, परन्तु आपके पिछ्ले पत्र पर मेरे इतने ऑसू गिरे हैं कि उस पत्र को मैं व्यवस्थित रूप से सभालकर रखॅु, ऐसी मेरी कोई स्थिति नहीं। पूरा ही पत्र ऑसूओं से भीग गया है। वाकी सच कहॅु? उस पत्र में सासु के बहू के प्रति अति प्रेममय बर्ताव की बात पढते-पढते मेरी ऑखों के समक्ष मेरी सासु आ गयी। 'मेरी सासु ने कभी मेरे साथ ऐसा प्रेममय वर्तन नहीं किया, ऐसा उदात्त स्वभाव उन्होंने कभी मेरे समक्ष प्रकट किया ही नहीं। मेरी प्रसन्नता की चिन्ता उन्होंने कभी इस तरह से की ही नहीं। नसीबदार बहू हो, उसे ऐसी सासु मिले।' ऐसी विविध विचार-श्रेणी मेरे मन में चल रही थी।

परन्तु

जब आपके पत्र में सासु के प्रति बहू के प्रचंड सद्भाव की बात मैंने पढी, तो उस बहू में अनायास ही मेंने स्वय को रखकर देखा, तो मुझे एहसास हुआ कि उस बहू के दिल की ऊॅचाई को छूने का तो मेरा कोई सामर्थ्य नहीं, परन्तु उस ऊॅचाई को मापने का भी मेरा सामर्थ्य नहीं।

ससुराल बिदा करते वक्त संस्कार तो

मुझे भी मेरी मम्मी ने वैसे ही दिये थे, जैसे उस वहू को उसकी मम्मी से मिले थे। सीख तो मेरे पप्पा ने भी मुझे वैसी ही दी थी, जेसी उस बहू को उसके पप्पा ने दी थी!

वचन तो मैंने भी मेरे मम्मी-पप्पा को वही दिया था, जैसा उस बहू ने अपने मम्मी-पप्पा को दिया था।

फिर भी ससुराल में कहॉ उस बहू की खानदानी और कहॉ मेरी अधमता?

सासु के चित्त की प्रसन्नता के खातिर अपने सुख का बलिदान

देने की उस बहू की मर्दानगी कहाँ और मेरे सुख
के लिये सासु के चित्त को सतत क्षुब्ध रखने की मेरी
अधमता कहाँ? शक्कर की मिठास को भी शर्माना पडे,
ऐसे उस बहू के मुख में से निकले हुए शब्द कहाँ और
नीम की कडवाहट भी फिकी पडे,
ऐसे मेरे मुख में से निकलनेवाले शब्द कहाँ?
विहंगावलोकन तो शायद अब करुँगी; परन्तु
मेरे कर्कश स्वभाव का व उसके कारण पैदा हुई परिस्थिति का
सिंहावलोकन करती हूँ, तो उस शायर की पंक्तियाँ मेरे जीवन
की वास्तविकता बन गयी हों, ऐसा मुझे लगता है।
'हो गये वीरान घर व सूने आंगन रह गये,
अवसर बीत गया व शुष्क तोरण रह गये।'
हाँ, **प्रेम से, स्नेह से व समाधान से इस घर को हरा-भरा रखने के ढेर सारे अवसर तो मेरे जीवन में भी आये थे, परन्तु प्रेम के स्थान पर द्वेष को अपनाकर, स्नेह के स्थान पर क्रोध को अपनाकर और समाधान के बदले संघर्ष का रास्ता अपनाकर मैंने मेरे स्वयं के जीवन को तो वीरान बनाया ही है, परन्तु मेरे समस्त घर को भी श्मशानवत् बना दिया है।**
क्या बताऊँ आपको?
आज तक मेरी सासु तो मुझसे डरती ही थी, परन्तु जिसे मेरे जीवन में मेंने पति का स्थान दिया है, वह दर्शन भी सतत मुझसे भयभीत ही रहा करता था। वह मुझे पूछे विना इस घर में मेहमानों को तो आमंत्रण नहीं दे सकता था, परन्तु मेरी सम्मति के विना इस घर में आप जैसे साधु-साध्वीजी भगवंतों को गोचरी-पानी वहोराने के लिये भी नहीं ला सकता था।
स्त्री जव विफरती है, तव कैसी बन सकती है,
इसका उदाहरण यदि आपको देना हो, तो मेरा नाम
आपको जरूर काम आयेगा।

श्रद्धा,



तुम्हारा पत्र पढा।
उस पत्र में व्यक्त हुई तुम्हारी वेदना पढी।
एक बात कह दुँ कि मुझे भूतकाल में
वैसे कोई दिलचस्पी नहीं और यदि दिलचस्पी है,
तो इतनी ही है कि भूतकाल से बोध पाकर
इन्सान अपना वर्तमान सुधार लेता है।
में स्पष्ट मानता हूँ कि भूतकाल को भूल जाना यह
भी एक तरह का पुनर्जन्म ही है।
माना कि,
भूतकाल में एक आदमी भिखारी था,
परन्तु आज वह करोड़पति बन गया है, इसका क्या?
माना कि, भूतकाल में इन्सान रोगी था, परन्तु आज वह
संपूर्ण निरोगी बन गया है, इसका क्या? माना कि,
भूतकाल में इन्सान दुर्जन था,
परन्तु आज वह सज्जन बन गया है, इसका क्या?
माना कि
भूतकाल में तुमने बहुल गलतियॉं की थीं,
परन्तु आज तुम गलतियों से पीछे हट रही हो, इसका क्या?
श्रद्धा,
मे सिर्फ मेरी ही बात नहीं करता, तमाम बुजुर्गो की
बात करता हूँ। **जो भी बुजुर्ग छोटों के गलत भूतकाल को उन्हें याद करा-कराके त्रस्त रखा करते हैं, उन्हें हीनताग्रंथि महसूस करने के लिये मजबूर किया करते हैं, उन्हें दुःख देने में एक प्रकार के क्रूर आनंद की अनुभूति किया करते हैं, उनकी आँखों में से आँसू गिराया करते हैं, वे बुजुर्ग वास्तव में अपने आश्रित के हितकारी बने रहने के बदले जाने-अनजाने भी उनके शत्रु बन जाते हैं।**
नहीं, मैं ऐसी गलती नहीं करना चाहता और मैं तो तुम्हें

भी यही सलाह देता हूँ कि तुम भी ऐसी गलती मत करना।
भूतकाल की गलतियों को या भूतकाल के गलत वर्ताव
को स्मृतिपथ पर लाते रहकर हाथ में रहे हुए वर्तमान
को भी गँवाना मूर्खता ही है।
अरे, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि भूतकाल की
स्मृति में मन इसीलिये व्यस्त रहता है और दिलचस्पी
लेता है कि वर्तमान को सुधारने की चुनौती उसे
न स्वीकारनी पड़े। नहीं, तुम स्पष्ट बन जाओ।
भूतकाल चाहे सुखद था या दुःखद,
वह रवाना हो ही गया है। भविष्यकाल अभी तक
आया ही नहीं और वह जब भी आएगा,
तब वर्तमानकाल के रूप में ही आनेवाला है और
वर्तमानकाल आज तुम्हारे हाथ में है।
इसे सम्यक् बनाने के लिये तुम सावधान हो जाओ।
इसके सदुपयोग के लिये तुम जागृत बन जाओ,
इसे सार्थक करने के लिये तुम उत्साहित बन जाओ,
सिर्फ सासु के साथ ही नहीं, कुटुंब के सब सदस्यों
के साथ तुम्हारे संबंधों में ऐसी आत्मीयता पेदा कर दो कि
वह आत्मीयता गन्ने जैसी न रहकर गुड जैसी बन जाय।
गन्ना मीठा होता है,
परन्तु उसके कुछ भाग ऐसे होते है, जिनमें गांठ भी होती है।
और जहॉ गांठ होती है, वहॉ रस नहीं होता।
जबकि गुड की तो सारी बात ही अलग है।
वह तो चारों ओर से... आगे से, पीछे से, ऊपर से,
नीचे से, अन्दर से, वाहर से मिठासवाला ही होता हे।
तुमने चिरायता बनना बन्द किया है,
इसका मुझे अपार आनन्द है, परन्तु अब गन्ना वनकर
ही संतोष न पाकर गुड़ बनने तक तुम पहुँच जाओ,
ऐसे मेरे अन्तर के आशीर्वाद हैं।

महाराज साहेब,



किन शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त करूँ?
मेरी बेशर्मी व निर्लज्जता आप तो याद रखना नहीं चाहते, परन्तु मुझे भी याद रखने देना नहीं चाहते। मेरी गलतियाँ याद करके आप तो मेरे प्रति कठोर बनना नहीं चाहते, परन्तु मेरी गलतियों को याद करके मैं सतत हीनताग्रथि महसूस करती रहुँ, ऐसा भी आप नहीं चाहते। भूतकाल को भूलकर आप तो मेरी आत्मा को वात्सल्य से नहला देने का उत्साह दिखा रहे हैं, परन्तु मैं स्वय भी भूतकाल को भूलकर मेरे वर्तमान को सुधार दुं, इसके लिये आप मुझमें उत्साह का बल भर रहे हैं। मेरे अपराध के लिये आप मुझे सजा करना नहीं चाहते, मुझे सिर्फ माफ करना ही नहीं चाहते, बल्कि, प्रेम देकर मुझे निर्दोष बनाना चाहते हें।
आपको और तो क्या कहुँ?
परन्तु पश्चात्ताप की व प्रसन्नता की इन पावन पलों में इतना तो जरूर कहुँगी कि मेरे प्रति आपके प्रेम को यानी वात्सल्य को सार्थक करने के लिये मैं मुझसे जो भी हो सकेगा, सब कुछ करुँगी।
जगत के जीव मात्र के साथ आत्मीयता का नाता बाधनेवाला सयम जीवन अंगीकार करके आपने तो अपना जन्म सार्थक कर दिया है;
परन्तु
कम से कम अपने परिवार के साथ आत्मीयता का नाता जोडकर मैं मुझे मिले हुए गृहस्थ जीवन को तो गौरवप्रद बनाकर ही रहुँगी। मैं चाहती हूँ कि
इस विषय में आपकी ओर से कुछ विशेष मार्गदर्शन मिले।

श्रद्धा,

माता, महात्मा व परमात्मा।
इन तीनों में एक विशिष्ट गुण है, वह है-

प्रेमप्रदान का।

माता का प्रेम चाहे पुत्र तक ही सीमित होगा,
परन्तु पुत्र की गलतियों पर ध्यान दिए विना वह उसे
प्रेम देती ही रहती है। महात्मा का प्रेम चाहे परमात्मा
के प्रेम जितना व्यापक व विशुद्ध न हो, लेकिन जगत
के जीवों के अपराधों व पापों की परवाह किए बिना
वे सब जीवों को प्रेम देने के लिये तत्पर ही रहते हैं।
हालॉकि,
'महात्मा' की कक्षा में मेरा नंबर है या नहीं,
यह तो मैं नहीं जानता; परन्तु इस कक्षा में मेरा नंबर
आ जाय, इसके लिये प्रयत्नशील तो जरूर हूं।
और इसीलिये तुम्हारे भूतकाल के अपराधों को याद रखने
की नादानी मैं नहीं करना चाहता, परन्तु प्रेम देकर तुम्हारे
जीवन को अपराधमुक्त बनाने के लिये और अधिक से
अधिक विशुद्ध बनाने के लिये तुम क्या कर सकती हो,
इसका सम्यक् मार्गदर्शन देना चाहता हूँ। सच बताऊँ?
मेरे अन्त.करण को मैं प्रेमसभर इसीलिये रख रहा हूं कि
**अन्तःकरण जब प्रेमसभर होता है, तब अन्दर अप्रकट रूप
से रहे हुए तमाम गुण बाहर प्रकट होते रहते हैं; ऐसा मेरा
एकाध वक्त का नहीं, परन्तु अनेक बार का अनुभव हे।**
प्रेमसभर अंत करण से में उदारता ही रख सकता हूं, कृपणता
नहीं। मैं प्रसन्न ही रह सकता हूं, उद्विग्न नहीं;
मैं आज्ञांकित ही बना रहता हूं, उद्धत नहीं;
मैं व्यापक ही बना रहता हूं, संकुचित नहीं;
मैं विशुद्ध ही बना रहता हूं, मलिन नहीं।
घर का दरवाजा खोलने से बगीचे की सुगंध ही मिलती हो,
तो वह दरवाजा बन्द रखने की मूर्खता करके गंदगी के ढेर की
दुर्गन्ध का अनुभव करानेवाला दरवाजा खोलने की महामूर्खता
मैं नहीं करुँगा, यह तो तुम भी समझ सकती हो न?

महाराज साहेब,



आपने तो जीवन का एक गजब का रहस्य खोल दिया।
अन्तःकरण में जब प्रेम का महासागर हिलोरे लेता हो,
तब अन्दर से सद्‌गुणों के मोती ही बाहर आते हैं और
द्वेष का महासागर हिलोरे लेता हो, तब
दोष के मूर्दे ही बाहर आते हैं।
आपके समक्ष एक बात कबूल करुँ?
आपने आपके जीवन में प्रेमसभर अन्त करण से
अनेकों बार सद्‌गुणों के प्रकटीकरण का अनुभव किया है,
तो मैंने मेरे जीवन में द्वेषसभर अन्त करण से अनेकों बार
दुर्गुणों के प्रकटीकरण का अनुभव किया है। सासु के प्रति
द्वेषभाव ने मेरे भाषाप्रयोग को कर्कश बना दिया है,
तो दर्शन के प्रति द्वेषभाव होने से मैंने उसकी प्रभुपूजा को
भी 'ढोंग' ही कहा है। ननद के प्रति द्वेषभाव होने से बिना
किसी कसूर के भी उसे अपराधी के कटघरे में खडा किया है,
तो भाभी के प्रति द्वेषभाव से मैंने उसके विरुद्ध भाई के कान
भरे हैं। इससे भी आगे बढकर कहूँ,
तो द्वेष होने के कारण मैंने दर्शन को धर्म करने से भी
रोका है, सासु के सत्कार्यों की भी निदा की है,
परिवार के तमाम सदस्यों को मैंने कई बार अपने आवेश
का शिकार भी बनाया है, तो साधु-साध्वीजी के घर में
पधारने पर अरुचिभाव भी दिखाया है।
संक्षेप में, मन के अगोचर प्रदेश में अड्डा जमाकर बैठे हुए अनेक
प्रकार के दुर्गणों को द्वेषभाव की मौजूदगी में बाहर प्रकट
करते रहकर मैंने घर में क्लेश की व अतर में सक्लेश
की जो होली सुलगायी है, उसका वर्णन करने के लिये
तमाम शब्द कम पडते हैं।
खैर, यह मेरा भूतकाल था, मेरा भविष्यकाल ऐसा
नहीं ही बननेवाला है, इसका मैं आपको यकीन दिलाती हूँ।

क्योंकि अब मैं वर्तमान को सम्यक् बनाने हेतु कटिबद्ध बन चुकी हूँ। प्रयत्नपूर्वक भी द्वेषभाव को दूर करके अन्तर में प्रेमभाव की प्रतिष्ठा करने में मैं काफी सफल बनी हूँ।
फिर भी एक बात आपसे पूछुँ?
विशाल संयुक्त कुटुंब में रहने के बदले यदि मैं व दर्शन अलग रहने लगें, तो द्वेषभाव के शिकार बनना कम हो जाएगा, ऐसा आपको नहीं लगता?
संयुक्त कुटुंब में कितनों के मन संभालने पडते हें, यह शायद आप नहीं जानते। मेरी ही बात करुँ?
सासु की सुबह की चाय का ध्यान मुझे रखना पडता है, तो ससुरजी की नौ बजे की चाय का ध्यान भी मुझे रखना पडता है। ननद के कॉलेज का समय मुझे संभालना पडता है, तो दर्शन का ऑफिस का टिफिन भी मुझे ही तैयार करना पडता है। यह तो हुई सिर्फ रसोई-घर की बात, परन्तु इसके सिवाय भी कितनों के समय मुझे संभालनें पड़ते हैं, उसकी विस्तृत जानकारी आपको लिखने का कोई अर्थ नहीं। परन्तु यह तो हकीकत ही हे कि मैं सबका सब कुछ तो नहीं संभाल सकती,
कोई न कोई कमी तो रह ही जाती हे।
इससे दिल खट्टे होते हैं, शब्दप्रयोग कर्कश बनते हें।
वातावरण तंग बनता है, दिमाग तनावग्रस्त रहता हे,
किसीका गुस्सा किसी पर उतरता है,
वातावरण में एक तरह की बेचैनी लगती है।'
इन सबसे मुक्त रहने के लिये मुझे तो एक ही विकल्प उचित लगता हे-
संयुक्त कुटुंब में रहने के बदले स्वतंत्र रहना।
न कोई क्लेश, न कोई झगडा, न ही टंटा।
बस, प्रसन्नता ही प्रसन्नता।
इसके बारे में आपकी क्या राय हे?

श्रद्धा,



तुम्हारे पत्र में तुम्हारे द्वारा रखे गये विकल्प के
बारे में जवाब देने से पहले मैं तुम्हें एक ऐसे
सयुक्त कुटुब की बात लिखना चाहता हूँ, जिस
कुटुब की स्वस्थता-प्रसन्नता व मस्ती देखकर मे स्वय
स्तब्ध रह गया हूँ। करीब ४८ सदस्यों का वह कुटुव है;
एक ही रसोईघर में सब भोजन करते हैं,
एक ही घर में सब रहते हैं। चार बेटे, चार वहू,
बेटों के बेटे आदि से
हरे-भरे उस कुटुव की प्रसन्नता की वात एक
पत्रकार के कान में पडी। उस पत्रकार ने कुटुव
के मुखिया से बातचीत की।
'एक ही घर में इतनी प्रसन्नता से ४८-४८ सदस्य रह
सकते हैं, इसका क्या राज हे?'
'वैसे देखा जाय तो कोई राज नहीं, फिर भी
**दो गुण हमारे परिवार ने ऐसे आत्मसात् कर लिये हैं कि
उनके प्रभाव से हमारे कुटुंब में सब सदस्य सदाबहार
प्रसन्नता का ही अनुभव करते हैं। उन दो गुणों में से
एक गुण है विवेक का व दूसरा गुण है - सहिष्णुता का।**
मेरी ही बात करुँ, तो मैं घर का नायक हूँ।
कीमती चीजों की खरीदी मुझे ही करनी होती हे।
इस खरीदी में मैं सतत विवेक रखता हूँ।
उदाहरण के लिये - बडी बहू के लिये
नेकलेस लाना हो, तो भी जव तक चारों वहूओं के लिये
नेकलेस ला सकुँ, इतने पैसों की सुविधा न हो, तव तक
मे बडी बहू के लिए भी नेकलेस नहीं लाता।
और कभी किसी परिस्थितिवश मुझे ऐसा कुछ करना
भी पडे, तो भी दूसरी वहूयें इतनी सहिष्णु हैं कि
मेरे ऐसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार का किसीको कुछ वुरा

नहीं लगता। 'पिताजी जो कुछ भी करते हे,
समझकर ही करते होंगे,' ऐसा मानकर सब अपने मन
का समाधान कर लेते हैं और प्रसन्नता टिकाये रखते हे।
हालॉकि, यह तो मैंने एक ही घटना कही।
बाकी, हमारे परिवार के तमाम समझदार सदस्यों में विवेक
व सहिष्णुता - ये दोनों गुण हैं। अपने अभिप्राय में व वर्तन
में सब विवेक दृष्टि रखते हैं और अन्य के अभिप्राय
व वर्तन को सब सहिष्णु बनकर स्वीकारते हैं।
बस, यही है हमारे परिवार की सदाबहार प्रसन्नता का राज।'
श्रद्धा,
इमारत को टिकाये रखने के लिये स्तंभ की जरूरत
पड़ती है, शरीर को सीधा खडा रखने के लिये पॉव
की ज़रूरत पडती है।
गाडी पहियों के आधार पर खडी रहती है
और स्याही दवात के आधार पर एक जगह टिकी रहती है।
पारा थर्मामीटर में सुरक्षित रहता है
और गहने तिजोरी में सलामत रहते हैं।
यह जानकारी तो दुनिया के बहुजन वर्ग
के पास है ही, परन्तु
चाहे जैसा विशाल कुटुंब विवेक व सहिष्णुता,
इन दो गुणों के आधार पर ही टिक सकता है व
टिका रहता है।
यह जानकारी तो किसके पास है, यह प्रश्न है।
मैं तुमसे ही पूछता हूँ।
है तुम्हारे पास यह जानकारी?
है तुम्हारे पास इन दो गुणों की पूंजी?
तुम्हारा जवाब 'ना' में ही होगा और इसीका तो
यह परिणाम है कि तुम मेरे पास सयुक्त कुटुंव में से
अलग हो जाने की वात लेकर आयी हो।



महाराज साहेब,

आपका अनुमान सच है।
यदि मुझमें विवेक का गुण होता, तो मुझसे
मेरा परिवार तंग न आया होता और यदि मुझमें
सहिष्णुता का गुण होता, तो परिवार के किसी भी
सदस्य से मैं तग न आयी होती। इन दोनों गुणों का
मेरे जीवन में तो अभाव था, परन्तु इन दोनों गुणों की
अपेक्षा मेरे परिवार के सदस्यों से मैं रखती थी।
मेरे गुस्ताखी भरे शब्द मेरी सासु को सहिष्णु वनकर
माफ कर देने चाहिये। मुझे किसी भी प्रकार की आज्ञा करने
से पहले सासु को अपनी विवेकदृष्टि का उपयोग करना चाहिये।
मैं सबका सब कुछ सहूँ, ध्यान रखुँ, संभालुँ, तो मुझसे
होनेवाली भूलें भी सबको उदारतापूर्वक माफ कर देनी चाहिये।
यह थी मेरी मान्यता व यह थी सबके पास मेरी अपेक्षा।
और इसीका यह परिणाम आया था कि
सब मुझसे तंग आ गये व मैं सवसे तग आ गयी।
हालाँकि,
आज मेरे इस अभिगम में जबरदस्त परिवर्तन आया है।
विवेक व सहिष्णुता ये दोनों गुण अपनाने में मैंने काफी
प्रगति की है, और इसी कारण से परिवार में प्रसन्नता का
वातावरण छा भी रहा है। फिर भी मेरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न
यह है कि

**संयुक्त कुटुंब में रहें, तो यह सब मगजपच्ची (?) खड़ी
रहेगी न? इससे तो बेहतर है कि सासु-ससुर से अलग
ही हो जायें और स्वतंत्र फ्लेट में रहने चले जायें। इसमें
हर्ज ही क्या है? सुख-सुविधाओं का उपभोग किया जा
सकता है, जीवन का मजा लिया जा सकता है और
जीवन को क्लेश से व मन को संक्लेश से मुक्त रखा
जा सकता है।** आप नहीं मानेंगे,

परन्तु मैंने दर्शन को कई बार इसके बारे में
समझाया है। 'इस घर में न तो तेरे काम की कद्र
होनेवाली है, न ही मेरे काम की कद्र होनेवाली है।
तू पैसे कमा-कमाकर तेरा जीवन पूरा कर दे और मैं
काम कर-करके मेरा शरीर विगाड दुं। तेरे कमाये
हुए पैसों से मौज-मस्ती तो सब करेंगे, तेरे नसीव
में रहेगी सिर्फ मजूरी। मेरी इस वेगार से सब रहेंगे
सुख-चैन में, मेरे नसीब में रहेगी सिर्फ थकावट व ऊब!
इससे तो बेहतर है कि हम अलग हो जायें। हम अभी
जवान हैं। इस वय को यों ही बरबाद कर डालें?
मम्मी की तबीयत ठीक नहीं रहती,
पप्पा बाहर नहीं जाते,
हम दिन-भर घर में ही बंधे रहें?
कोई सुख-सुविधा नहीं और दिक्कतों का कोई पार नहीं।
यह घर है या धर्मशाला? यह जिंदगी है या सजा हे?
हॉ, मम्मी-पप्पा के प्रति तुझे बहुत लगाव हो, प्रेम हो,
तो सप्ताह में एक बार हम उन्हें मिलने चले आयेंगे।
उनके लिये मिठाई का डिव्बा व फल की टोकरी लेते
आयेंगे, परन्तु चल,
एक वार हम मम्मी-पप्पा से अलग तो हो ही जायें।
एक वार तो मैंने उसे धमकी भी दी थी कि यदि चंद समय
में तू इस निर्णय पर सम्मति की मुहर नहीं लगायेगा,
तो या तो मैं मायके चली जाऊँगी या फिर आत्महत्या
करके जीवन समाप्त कर दुँगी।
महाराज साहेब, मेरी इस धमकी से दर्शन डर भी गया था व
थोडे ही समय में इसका कोई निर्णय लेने ही वाला था,
परन्तु इसी बीच वह आपके पास मेरी फरियाद लेकर आया
और आपने मेरे साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया।
अव इस प्रश्न का समाधान आप ही कीजिये।

श्रद्धा,



यह वृत्ति सिर्फ तुम्हारी ही नहीं, तुम जेसी अनेक युवतियों की है। स्वतत्र रहें, तो ही शान्ति मिले, सुख-सुविधायें मिलें व मौज-मस्ती करने मिले। सयुक्त कुटुब में रहें, तो सतत बेचैनी में ही रहना पडता है, तकलीफें सहनी पडती हें और मौज-मस्ती का तो कहीं नाम ही नहीं। वर्तमान युग में करीव-करीव तमाम युवा वर्ग की यही मान्यता है। और युवावर्ग में भी खास करके युवकों से भी अधिक युवतियों की यह मान्यता है। इस विषय में मे तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि **संयुक्त कुटुंब में प्रतिकूलतायें ज़रूर सहनी पडती हें, परन्तु सलामती भी जोरदार है, जबकि स्वतंत्र जीवन में सुविधायें ज़रूर हैं, परन्तु सुरक्षा नहीं, यह वास्तविकता सतत नज़र के सामने रखना।**

आप सबके ससारी जीवन के बारे में क्या वात करुँ?
हमारे सयम जीवन में भी यही हकीकत है।
यदि मे विशाल समुदाय में रहुँ, अनेक साधुओं के वीच रहुँ, तो मुझे प्रतिकूलतायें बहुत सहनी पडती हें, परन्तु मेरा सयम जीवन सलामत बन जाता है। यदि मे मेरी स्वच्छंद मति से सिर्फ एक या दो साधुओं के साथ रहुँ, तो मुझे सुविधायें अधिक मिलती है, परन्तु मेरे संयमजीवन की सुरक्षा खतरे में पड जाती हे।
में, क्या पसन्द करुँ? सुविधा या सलामती?
में किस पर चौकडी मारुँ? असुविधाओं पर या असुरक्षा पर?

श्रद्धा,

मान लो कि मम्मी-पप्पा से तुम व दर्शन अलग रहने चले गये हो। स्वतत्र छोटे-से फ्लेट में तुम दोनों रहते हो। घर में आकर्षक फर्नीचर है, टी.वी -वीडियो हे। तुम्हारे सर पर कोई जवाबदारी न होने से तुम दिन भर FREE रहती हो

समय गुजारने के लिये तुम मेगेज़िन पढा करती हो,
टी.वी. देखा करती हो, सखियाँ फोन किया करती हैं,
पडौस में वैठने जाती हो, महिला-मंडल में जाती हो,
थोडे-थोडे दिनों में खरीदी करने निकल पडती हो।
दर्शन व्यवसाय के काम से दिन में अधिकांश वक्त घर से बाहर होता है। वह रात को घर लौटता है, तब एकदम थका हुआ होता है। उसके मन में धंधे के ही विचार चला करते हैं। तुम उसके साथ बात करना चाहती हो, परन्तु तुम्हारे साथ बात करने के लिये उसके पास या तो 'समय' नहीं होता या 'मूड' नहीं होता। तुम उद्विग्न हो जाती हो, उस पर चिढ जाती हो। संबंधो में एक छोटी-सी दरार पैदा होती है। बाद में तो अनेक प्रकार के निमित्त मिलने से यह दरार बढ़ती ही जाती है और एक दिन ऐसा आता है, जब तुम दोनों एक दूसरे के साथ झगड़ने लगते हो।
कभी-कभी आवेश में आकर दर्शन तुम पर हाथ भी उठाता है। और कोई ऐसी कमजोर पल में दर्शन की अनुपस्थिति में तुम या तो व्यभिचार के मार्ग पर चलकर निर्लज्ज बन जाती हो, या फिर आत्महत्या करके जीवनलीला समाप्त करने के लिये तैयार हो जाती हो। दर्शन तुम्हारा इरादा जान लेता है, उस वक्त तो वह झुककर तुम्हें मना लेता है, परन्तु उस दिन से तुम दोनों के बीच के संबंधों में ऐसी खाई पैदा होती है, जो कभी भरी नहीं जा सकती। न तो वह तुम्हें अच्छा लगता है, न तुम उसे अच्छी लगती हो।

श्रद्धा,

तुम्हें शायद ऐसा लगता होगा कि महाराज साहेब बहुत ज्यादा अतिशयोक्ति कर रहे हैं, परन्तु थोड़ा धीरज धरो। अगले पत्र में एक ऐसी सत्य घटना तुम्हें लिखुंगा, जो पढकर तुम निर्णय कर लोगी कि मैं सुविधाओं के प्रलोभन में संयुक्त कुटुंब कभी नहीं छोडुंगी।

श्रद्धा,



उन दिनों हम महाराष्ट्र में विचरण कर रहे थे।
एक बडे शहर में एक धार्मिक प्रसंग पर हम जा रहे थे।
जिस दिन उस शहर में हमारा प्रवेश था,
उसके पिछ्ले दिन ही वहॉ एक करुण घटना घट गयी।
करीब २८ वर्ष की एक विवाहित युवतीने अपने शरीर पर
मिट्टी का तेल छिडककर मरने का प्रयास किया।
उस युवती को बचाने के काफी प्रयत्न किये गये,
फिर भी छ-सात दिन बाद उसने अन्तिम सॉस ली।
उस युवती ने यह कदम क्यों उठाया,
इसके बारे में वहॉ के एक युवक के द्वारा जब मैंने जाना,
तो में स्तब्ध रह गया। उस युवक के ही शब्दों में
'महाराज साहेब'
उस युवती ने प्रेम-विवाह किया था।
संयुक्त कुटुब में रहते हुए उसने झगडा करके
पति को मॉ-बाप से विरुद्ध भडकाकर सयुक्त कुटुंब से
अलग किया। जवानी का नशा, सपत्ति की भरमार, वासना
की अधीनता, स्वतंत्र आवास, टी वी के उत्तेजक दृश्यों के
दर्शन आदि परिबलों ने उन दोनों को मर्यादाहीन बना दिया।
क्लबों में भटकना,
होटलों में जाना,
थियटरों में पहुचना यह सब उनके जीवन में सामान्य बन
गया। शुरूआत में दो वर्ष तो ठीक-ठीक गये, परन्तु
बाद में दोनों के बीच घर्षण शुरू हुआ।
बोलाचाली, गाली-गलौज, मारपीट तक
मामला पहुँच गया। आखिर तलाक तक बात पहुँच गयी।
शहर में मनाये जानेवाले धार्मिक उत्सव के बारे में दोनों
के बीच बहस चली। 'हम इन दिनों बाहर घूमने जायें',
पत्नी ने पति के समक्ष बात रखी।

'परन्तु क्यों?'
'इस शहर में धार्मिक प्रसंग होने से हमारे यहाँ भी बहुत मे
'यह तो अच्छी बात है न?' 'तुम्हें अच्छा लगता होगा,
मुझे तो अभी से चिन्ता हो रही है।'
'चिन्ता किस बात की?' 'मेहमान आयेंगे, घर में रहेंगे,
उनके भोजन की व्यवस्था मुझे करनी पडेगी।
उन्हें संभालने की जिम्मेदारी मुझे निभानी पडेगी।
वे घर गंदा करके जायेंगे, वह मुझे साफ करना पडेगा।
यह सब मुझसे नहीं होगा।'
'हम घर में रसोईया रख लेंगे।'
'नहीं, मैं इसमें सहमत नहीं।' 'तो एक काम कर,
तू तेरे मायके चली जा;
मैं यहाँ रसोईया रखकर मेरी व्यवस्था कर लुंगा।
और घर पर आनेवाले मेहमानों को भी संभाल लुंगा।'
'नहीं, यह बात भी मुझे मान्य नहीं।
मैं यहाँ नहीं रहना चाहती और तुम्हें भी यहाँ नहीं रहना हे।
'यह निर्णय करनेवाली तू कौन?'
'इस घर में मेरा ही निर्णय FINAL माना जाना चाहिये।'
'मैं तेरे इस अधिकार को नहीं मानता।' 'माँ-बाप से अलग
के मेरे निर्णय को मान्य करते वक्त तुम्हारी अक्ल घास च
गयी थी क्या?' 'खबरदार! अब आगे एक भी शब्द बोली
'तो तू क्या कर लेगा?'
(आवेश में 'तुम' का स्थान 'तू' ने ले लिया।)
'मैं? मैं तेरी जिदगी बरबाद कर डालुंगा?
'तू क्या मेरी ज़िदगी बरबाद करेगा?
मैं ही ऐसा कदम उठाऊँगी कि तुझे जेल के सींखचे गिनने
ही जिदगी के बाकी दिन पूरे करने पड़ेंगे।'
श्रद्धा, ज्वार को वापिस मोड़ा जा सकता है, परन्तु बाढ
करके ही रहती है।' इस विनाश की बात अगले पत्र में।

श्रद्धा,



मेरे पास बेठे हुए उस युवक ने वात आगे चलायी।
महाराज साहेब, बाद में तो पति-पत्नी, दोनों आवेश
की पराकाष्ठा पर पहुँच गये।
'तू मेरे साथ बाहर नहीं आयेगा?' पत्नी ने पूछा।
'ना'।
'पक्का निर्णय है?'
'हॉ'।
'तो सुन, मेरा निर्णय भी पक्का है।'
'कौन-सा निर्णय?'
'शरीर पर मिट्टी का तेल छिडककर जलने का।'
'इस निर्णय में तू अडिग रहना।'
पति के इस वाक्य से तो पत्नी सर से पॉव तक सुलग उठी।
एक पल का भी विलंब किये बिना पत्नी जहॉ बैठी थी,
वहॉ से खड़ी होकर रसोईघर में पहुॅच गयी।
डिब्बे में से मिट्टी का तेल निकालकर तपेले में भरा और वह
तपेला लेकर बाथरूम में घुसी। दरवाजा बन्द किया और सर
पर मिट्टी का तेल डालकर दियासलाई जलायी।
कुछ पलों में वेन्टीलेशन से धूँआ बाहर निकलने लगा।
पति को अंदाज आ गया कि पत्नी आवेश
में आकर जो बोलकर गयी थी, वह उसने कर दिखाया है।
वह दौडा बाथरूम की तरफ। बाहर से वहुत आवाज दी,
परन्तु पत्नी ने दरवाजा नहीं खोला। पति पडौस में गया।
सारी बात लोगों को बतायी। दो-चार लोग आये।
सबने मिलकर दरवाजा तोडा। पत्नी का ६०% शरीर जल
गया था, फिर भी पति को देखते ही चिल्लायी। 'नालायक!
खबरदार है यदि मेरे शरीर को हाथ भी लगाया तो।
पति लाचार बनकर खडा रहा। घर के नीचे एम्बुलेन्स आ गयी।
पति के हाथ का सहारा लिए विना पत्नी एम्बुलेन्स में बेठ तो गयी,

परन्तु अपने पति को पास में बैठने का भी मना कर दिया। उसे अस्पताल में दाखिल किया गया। डॉक्टरों के भरसक प्रयत्नों के बावजूद वह बची तो नहीं, परन्तु मरते-मरते भी वह जो शब्द बोली, वैसे शब्द तो शायद कोई डायन भी नहीं बोले। अपने बिस्तर से कुछ दूर खडे पति को आखरी साँस लेने से पहले वह सुनाती गयी कि

'इस जन्म में तो तुझे ज़िदा रहने देकर मैं जली हूँ,
परन्तु अगले जन्म में तो मैं ज़िंदी रहकर तुझे जला दुँगी।'

श्रद्धा,

आँख मिली व संबंध बंध तो गया, परन्तु
आँख बन्द होने के बाद अगले जन्म में भी ये संबंध
टिके न रहें, इसकी घोषणा करती गयी।

कितनी करुण है यह घटना!

पत्नी का हठाग्रह, पति का व्यंग्यसभर शव्दप्रयोग, इन दोनों के योग से पत्नी का जीवनदीप असमय बुझ तो गया, परन्तु बुझते-बुझते भी पति की शेष जिदगी को बरबाद करता गया।

संयुक्त कुटुंब में से अलग होकर सुविधाओं का उपयोग करने व मौज-मस्ती करने के अरमानों की चिता जिस तरह से जली, वह यही सूचित करती है कि इस राह पर कदम भरने से पहले प्रत्येक जवान दंपती को लाख बार विचार करने जैसा है।

हाँ, शायद संयुक्त कुटुंव से अलग होने के वाद प्रत्येक दंपती के जीवन में ऐसा करुण अंजाम नहीं आता, फिर भी संबंध-विच्छेद का भय, प्रेम के ह्रास का भय, सदाचार-नाश का भय, आवेशग्रस्त चित्त का भय, अति परिचय से पैदा होनेवाली अवज्ञा का भय, रुक्ष व्यवहार का भय, स्वच्छन्द जीवन पद्धति का भय, ऐसे तो ढेर-सारे खतरे उनके सर पर सतत मंडराते रहते हैं, इसमें तुम किसी प्रकार की शंका रखना ही मत। सावधान।

महाराज साहेब,



पिछ्ले दो पत्रों में आपके द्वारा लिखी गयी सत्य घटना पढकर मैं रात भर सो नहीं पायी। संबध की शुरूआत हुई प्रेम से व समाप्ति हुई वैर से। अग्नि की साक्षी में वैवाहिक जीवन की शुरूआत होती है व उस वैवाहिक जीवन के करुण अन्त के वक्त भी अग्नि, कैसा जालिम योग।

एक स्त्री, जिसमें प्रेम का महासागर हिलोरें लेता हो, वह स्त्री ऐसी हठाग्रही बन सकती है, कदाग्रही बन सकती है,
क्रूर बन सकती है, क्रोधाविष्ट बन सकती है,
वैर बढानेवाली बन सकती है,
यह न मानी जा सके, ऐसी बात है।
फिर भी आपने स्वयं ही यह घटना लिखी है,
अत. इसकी सच्चाई के बारे में शंका उठाने के लिये मेरा मन बिल्कुल तैयार नहीं, और तो में क्या कर सकती हूँ?
परन्तु परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि उस स्त्री की आत्मा जहॉ भी हो, उसे शान्ति मिले, स्वस्थता मिले।
अब में मेरी बात करुँ?
संयुक्त कुटुब से अलग होकर पति-पत्नी को स्वतंत्र रहने जाने पर जो सभवित नुकसान उठाने पड सकते हें, उनकी बात आपके गत पत्र में जानी तो सही, परन्तु इस विषय में आपसे यही पूछ्ना है कि
विवेक व सहिष्णुता के जो दो गुण स्त्री को संयक्त कुटुंब में भी प्रसन्न रख सकते हैं, वे दोनों गुण स्त्री अपने पति के साथ स्वतंत्र रहकर टिका ही नहीं सकती, ऐसा थोडे ही है?
यदि टिका सकती है, तो फिर पति-पत्नी संयुक्त कुटुंव से अलग होकर स्वतंत्र रहें, तो इसमें क्या हर्ज हे?

श्रद्धा,

चलो कबूल करता हूँ कि विवेक व सहिष्णुता के गुण सुरक्षित रखकर पति-पत्नी सयुक्त कुटुंब से अलग हो रहे हैं, परन्तु एक बात पूछुँ?

जिस उम्र में मम्मी-पप्पा का शरीर किसीकी मदद की अपेक्षा रखता हो, मम्मी-पप्पा का मन सतत किसीके साथ व प्रेम की चाह रखता हो, मम्मी-पप्पा का जीवन विश्रांति व निश्चिन्तता चाहता हो, उस उम्र में और उस स्थिति में मम्मी-पप्पा के साथ के संबंध पर पूर्णविराम रखनेवाला ऐसा कदम उठाना, यह एक प्रकार की क्रूरता नहीं?

भर दुपहर की तेज धूप में अपार ठंड़क देता हुआ किसीका आसरा तोड़ देना कनिष्ठतम अपराध है, तो पुख्त वय में मम्मी-पप्पा को प्रसन्न रखनेवाला व सहारा देनेवाला पुत्र उनसे छीन लेना क्रूरतम अपराध नहीं?

सांसारिक जीवन में ढेर-सारे कष्टों के बीच भी अपने मुख को हँसता रखने में जबरदस्त सफलता पानेवाले किसीके भी माता-पिता किन दो अवसरों पर आँखों में से बहते हुए अश्रु-प्रवाह को नहीं रोक सकते, यह तुम्हें पता हे?

न पता हो, तो बता दुं।

एक अवसर है, पुत्री की विदाई का व दूसरा अवसर है, पुत्र की बेवफाई का। इन दो अवसरों पर फौलादी सीना रखनेवाले मम्मी-पप्पा भी आँखों में से बहते हुए अश्रुप्रवाह को रोक नहीं सकते।

मैं तुमसे पूछता हूँ।

घर में रहकर भी पुत्र जब मम्मी-पप्पा का तिरस्कार करता है, तब यदि मम्मी-पप्पा मानसिक रूप से टूट जाते हों, तो पत्नी के उकसाने से पुत्र मम्मी-पप्पा का तिरस्कार करके घर छोडकर चला जाता हो, तव मम्मी-पप्पा का क्या होता होगा, इसकी तुमने कभी कल्पना भी की हे?

न की हो, तो कर देखना।

तुम बोल उठोगी,

'ना, किसी भी पत्नी को अपने पति को ऐसा कनिष्ठतम अपराध करने के लिये भडकाना नहीं चाहिये।'

महाराज साहेब,



आपके पिछले पत्र ने मेरी ऑखों में ऑसू तो ला दिये, परन्तु मुझे स्वयं को मेरे भूतकाल की याद दिला दी। मुझे बराबर याद है कि मेरी शादी के करीब एक सप्ताह पहले मेरे मम्मी-पप्पा अकेले ही उनके कमरे में बैठे थे। कमरे का दरवाजा बन्द था, परन्तु उस कमरे की दीवानखाने के ओर की खिडकी खुली थी। वहॉ से गुजरते हुए अचानक मेरे कानों में पप्पा की आवाज सुनायी दी। मे खडी रह गयी। पप्पा मम्मी से कह रहे थे -

'यह श्रद्धा अब हमें छोडकर चली जायेगी? मेरी यह बेटी कितनी लाडली है। रात को ऑफिस से थका-हारा घर आता हूॅ, तब इसके मुॅह में से 'पप्पा आ गये?' के शब्द मेरे कान में पडते ही मेरी थकावट उतर जाती हे, रात को वह मेरा सर दबाती है, तब ऐसा लगता है मानों चंदन की शीतलता का स्पर्श होता है। मेरे मुख पर बेचैनी देखते ही वह दौडती हुई मेरे पास आ जाती है व मुझसे कहती है, 'पप्पा! सेनापति को तो हमेशा हॅसते ही रहना चाहिये, तभी तो उसकी सारी सेना हॅसती रहेगी।' बस, उसके इस एक ही वाक्य से मेरे चेहरे पर हॅसी छा जाती है। तुम श्रद्धा से एक बात पूछ सकोगी?'

'क्या?'

'वह ससुराल जायेगी, तब मुझे साथ नहीं ले जायेगी?'

महाराज साहेब। इतना बोलते-बोलते तो पप्पा सिसकियॉ भरकर रोने लगे। पप्पा जैसे मजबूत छातीवाले जब इस तरह से रोने लगें, तो मम्मी की हालत क्या होगी? पप्पा के साथ वह भी रोने लगी। खुली खिडकी की आड में खडे रहकर मैंने रोते हुए मम्मी-पप्पा को देखा, तो मैं सिहर उठी।

मम्मी पप्पा से कह रही थी, 'इस तरह आप ढीले हो जायेंगे, तो श्रद्धा की शादी का प्रसंग संभालेगा कौन? श्रद्धा आपके लिये ऑख का तारा है, तो मेरे लिये तो हृदय ही है। वह ससुराल जायेगी,

उसके बाद मुझे नहीं लगता कि मैं ज्यादा जी सकुँगी।'
मम्मी आगे क्या बोली, यह तो मैं नहीं जानती,
परन्तु मम्मी का आखरी वाक्य कान में पड़ते ही मैंने
दौड़कर मम्मी-पप्पा के कमरे का दरवाजा पॉव से
लात मारकर खोल दिया। कमरे में घुसते ही मे
पप्पा के गले लग गयी।
रोते-रोते इतना ही बोली-
'पप्पा! मैं आपको छोडकर कहीं नहीं जाऊँगी।
मुझे शादी नहीं करनी। मुझे ससुराल नहीं जाना।
मुझे यहीं रहना है।' महाराज साहेब! ऑसू तो सिर्फ
छ ऑखों में से ही बह रहे थे, परन्तु उस वक्त ऐसा
लग रहा था कि मम्मी-पप्पा के कमरे की दीवार के
प्रत्येक कण में से ऑसू बह रहे हैं। क्या लिखुं आपको?
आखिर जो होना था, वह होकर ही रहा। दर्शन के पप्पा
बारात लेकर आये। शादी की शहनाईयॉ बजने लगीं।
छाती पर पत्थर रखकर पप्पा ने 'कन्यादान' का कर्तव्य
अदा किया। मैं पप्पा के घर की बेटी मिटकर दर्शन के
पप्पा के घर की बहू बन गयी।

रात को ग्यारह बजे बारात के साथ दर्शन के घर आने के लिये मैं बिदा हुई, उस वक्त मम्मी-पप्पा की आँखों के आँसू देखकर शायद ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी में सतत पिघलता हुआ हिमालय भी शर्मा गया होगा।

सच बताऊँ?
आपने शायद सहज रूप से ही पिछले पत्र में लिखा होगा
कि 'बेटी घर छोडती है, तब उसके मम्मी-पप्पा रो पडते हं,'
परन्तु आपके इस वाक्य ने मुझे मेरे स्वयं के भूतकाल में
पहुँचा दिया और अनायास ही भूतकाल के इस प्रसंग का
वर्णन मैंने आप पर लिख दिया।
इसमें कोई क्षति हुई हो, तो माफ कीजियेगा।'

श्रद्धा,



बेटी जब बिदाई लेती है, तब मम्मी-पप्पा का हृदय
कैसा वेसब्र बन जाता है, यह तुम्हारे निजी अनुभव
की बात तो तुम्हारे पत्र से जानी, परन्तु बेटा जब
मम्मी-पप्पा से अलग रहने जाता है,
तब मम्मी-पप्पा की वेदना किस हद तक बढ जाती है,
उसकी बात मैं इस पत्र में एक पिता के मुख से जो सुना,
वह तुम्हें लिखकर बताता हूँ। मम्मी-पप्पा ने इकलौते पुत्र को
संस्कार देने में कोई कमी नहीं रखी थी ओर पुत्र ने भी
संस्कार ग्रहण करने में कोई कमी नहीं रखी थी। उसकी उम्र
२३ साल हुई और माता-पिता ने उसके लिये सुशील कन्या
देखनी शुरू की। पुत्र को इसका पता चलने पर उसने मम्मी-पप्पा
को सामने से कह दिया कि 'आप दोनों को जीवन भर संभाल
ले व आप दोनों के स्वभाव को अनुकूल रहे, ऐसी ही कन्या
पसन्द कीजियेगा, उसका रूप-रग बहुत मत देखियेगा।'
पुत्र की यह बात सुनकर मॉ-बाप की ऑखों में हर्ष के ऑसू आ गये।
काफी देखने के बाद एक लडकी मॉ-बाप ने पसन्द की।
धामधूम से शादी की, परन्तु मॉ-बाप की धारणा गलत साबित हुई।
कुछ ही दिन बीते कि नयी बहू ने अपने पति के कान में
विष उंडेलना शुरू किया। जुबान में एकदम मिठास,
परन्तु हृदय में कातिल जहर! 'मेरे जैसी चतुर बहू घर में आने के बाद
मम्मी को रसोईघर से राजीनामा दे देना चाहिये,
ऐसा आपको नहीं लगता? आप इतने पढे-लिखे हे,
तो पप्पा के सर पर व्यवसाय का इतना टेन्शन क्यों रखना चाहिये?
मम्मी ने अपनी अलमारी की चाबी अलग रखी हे और
मुझे अलग अलमारी दी है। क्या मम्मी को मुझ पर विश्वास नहीं?
क्या आपको पता है कि बेंक में पप्पा के नाम का अलग खाता चलता है?
मेरी मम्मी का फोन आया, तब मम्मी ने उनसे मेरे बारे में
कितनी झूठी बातें की, वे आपको सुननी है? आप ज़िन्दगी भर

पप्पा से पूछ-पूछकर ही सब करते रहेंगे,
तो जीवन में ऐसे ही रह जाओगे।' श्रद्धा,

पेट में जानेवाला ज़हर तो इन्सान को एक ही झटके में खत्म कर देता है, परन्तु कान में जानेवाला ज़हर तो इन्सान को धीमे-धीमे सबको खत्म करने के लिये उकसाता है।

बस, यही हुआ उस संस्कारी पुत्र के साथ। हालाँकि,
शुरू - शुरू में तो उसने पत्नी के आगे मम्मी-पप्पा के वर्तन व अभिगम का बचाव किया, परन्तु धीरे-धीरे वह पत्नी की बातों में आने लगा और एक दिन उसने मम्मी-पप्पा से स्पष्ट शब्दों में कह दिया, 'ट्रक के कुछ टायर ऐसे होते हैं, जो एक्सीडेण्ट होने से पहले रिटायर नहीं होते। मैं नहीं चाहता कि आपकी भी यही स्थिति हो। मैं बखूबी व्यवसाय चला सकता हूँ, तो मेरी पत्नी कुशलता से घर चला सकती है। मैं आप दोनों से कह देता हूँ कि आपको अब हमारे जीवन में दखलबाजी तो करनी ही नहीं, परन्तु व्यवसाय व घर में भी दखलबाजी नहीं करनी है। हाँ, आपकी भोजन की थाली वक्त पर आ जाएगी। आपकी अन्य आवश्यकतायें भी पूरी हो जायेगी। परन्तु इसके सिवाय इस घर में आप हैं ही नहीं, इस तरह से आपको यहाँ रहना है।'
भूकंप के झटके को भी टक्कर मारे, ऐसे पुत्र के शब्द सुनकर माँ-बाप अवाक् रह गये। दोनों की आँखों से अश्रु बहने लगे। हृदय मजबूत बनाकर पप्पा इतना ही बोले, 'बेटे! तू जन्मा, तभी हमने तुझे अनाथाश्रम में छोड दिया होता, तो आज वृद्धाश्रम में मिलनेवाली व्यवस्था जैसी व्यवस्था में इस घर में रहने की बदनसीबी हमारे जीवन में नहीं आती। खैर,
तेरी जैसी मर्जी। तेरी बहू हमें रोटी खाने देगी, तो रोटी खा लेंगे और जहर देगी तो जहर खा लेंगे। और हाँ, हम रोज रात को वक्त पर सो तो जायेंगे, परन्तु कभी दूसरे दिन सुबह में न उठें, तो हम दोनों के शव का अग्निसंस्कार करने में विलंब मत करना।' इतना बोलते-बोलते तो बाप जोर से रो पड़ा।

श्रद्धा,



पुत्री घर छोडती है, तब मॉ-बाप की ऑखों में जो ऑसू होते हें, वे ऑसू तो प्रेम के होते हें, परन्तु पुत्र जब मॉ-बाप को दुतकारता है, उनसे बेवफाई करता हे, तब मॉ-बाप की ऑखों में जो ऑसू होते हे, वे पीडा के होते हें। उन ऑसूओं में प्रसन्नता नहीं होती, उद्विग्नता होती है। मैं तुम्हें यही कहुँगा कि दर्शन के कानों में तुम कभी ऐसा जहर मत डालना कि वह घर में रहकर मम्मी-पप्पा का तिरस्कार किया करे, मम्मी-पप्पा की उपेक्षा व अवगणना किया करे।

नहीं, तुम 'मॉ' नहीं बनी हो, इसलिये तुम्हें यह पता नहीं कि पुत्र द्वारा होती अवहेलना की वेदना कैसी होती हे। परन्तु मैं भार देकर तुमसे कहता हूॅ कि भूलकर भी इस राह पर कदम मत रख बैठना। सभव है कि इस राह पर उठे तुम्हारे कदम आनेवाले कल में तुम्हारी तरफ ही आकर खडे रह जायें। मम्मी-पप्पा की ऑखों में से अश्रू गिरवानेवाला दर्शन शायद कल तेरी ऑखों में से अश्रू गिरवाने लग जाय। मम्मी-पप्पा से दर्शन को दूर करने का तुम्हारा यह खतरनाक प्रयोग कल शायद तुम्हारे बच्चों को तुमसे दूर कर देनेवाला साबित हो। सौ बातों की एक बात, **तुम तुम्हारे तीन साल के बच्चे को भी अपने से जुदा होता देखने को तैयार न हो, तो दर्शन के मम्मी-पप्पा अपने ३० वर्ष के पुत्र को अपने से जुदा होते देखने को कैसे तैयार होंगे?**

थोडी असुविधायें सहनी पडें, तो सहकर भी, जवानी की मौज-मस्ती में कटौती करनी पडे, तो कटोती करके भी तुम संयुक्त कुटुंब में ही रहने का आग्रह रखना। अलग रहने जाकर जीवन में अनेक प्रकार के खतरों को आमत्रण देने की भूल तुम हर्गिज मत कर बेठना।'

'महाराज साहेब,
संयुक्त कुटुंब में रहने से जिन दिक्कतों का सामना करना पडता है, उन्हें तो एक बार मैं घोलकर पीने के लिये तैयार हूॅ। मौज-मस्ती में कटौती करनी पड़ती हो, तो एक बार तो मैं वह भी करने के लिये तैयार हूॅ, परन्तु संयुक्त कुटुंब में सबके विभिन्न प्रकार के विचित्र स्वभावों को जिस तरह से निभाना पडता है, उसकी वेदना किस प्रकार सही जाय, यह मेरी समझ में नहीं आता। आप नाराज मत होईयेगा। वैसे, पत्रव्यवहार के माध्यम से आप मुझे जो भी लिख रहे हैं, उसका सार यही निकलता है कि मुझे ही सहनशील बनना चाहिये। रास्ते के एक कोने में बेठे हुए बीमार बैल को कोई चाहे जितना मारे या चाहे जितना परेशान करे, परन्तु वह जिस प्रकार कोई प्रतीकार नहीं करता, उसी प्रकार संयुक्त कुटुंब का कोई भी सदस्य मुझे चाहे जितना परेशान करे या मेरा चाहे जितना अपमान करे, मुझे उसका कोई प्रतीकार नहीं करना है। मुझे सहन ही करते रहना है।
यही आपका कहना है न? परन्तु, मैं आपसे पूछती हूॅ कि क्या यह संभव है? संयक्त कुटुंब में बहू के कुछ फर्ज हें, तो सासु का कोई फर्ज ही नहीं? पत्नी की कुछ जवावदारियॉ हैं, तो क्या पति की कोई जवाबदारी ही नहीं? भाभी के कुछ कर्तव्य हे, तो क्या देवर व ननद का कोई कर्तव्य ही नहीं? किसी शायर की लिखी ये पंक्तियॉ ही मेरे वर्तमान जीवन की वास्तविकता है। '**हमारे सपने का यह सद्भाग्य कहाँ से? सपने में मिले सुख हों सच; या वास्तविक जगत के सच्चे सुख भी हमारे नसीब में सपने बन गये हैं।**
आदर्श चाहे जितना अच्छा हो, सच्चा हो, परन्तु वास्तविकता तो स्वीकारनी ही पडती हे। ताली वजाने के लिये एक हाथ पर्याप्त नहीं, दो हाथ चाहिये। घर में प्रसन्नता की अनुभूति करने के लिये अकेली बहू को ही सुधरने की आवश्यकता नहीं, सासु को भी अपना दिमाग टिकाने रखना जरूरी ही हे।

श्रद्धा,



लगता है कि तुम आवेश में हो।

तुम्हारे लेखन में जबरदस्त आक्रोश छलकता नजर आ रहा है। एक बात का स्पष्टीकरण कर दुं कि में सबके सव कर्तव्य समझाने के लिए तुम्हारे साथ पत्रव्यवहार नहीं कर रहा। फिलहाल तो तुम घर में 'बहू' के स्थान पर हो, इसलिये मैं तुम्हें 'वहू' के फर्ज समझा रहा हूँ। हाँ, यदि तुम 'सासु' के स्थान पर होती, तो मं तुम्हें सासु के कर्तव्य समझाता। एक बात खास ध्यान में रखना कि **कुटुंब के किसी भी सदस्य को परिवार के सदस्यों से प्रेम, समर्थन व वफादारी मांगने से पहले स्वयं उसकी पहल करनी अत्यन्त ज़रूरी है।**

'मुझे सबका प्रेम जरूर चाहिये, परन्तु पहले मुझे सवको प्रेम देना हे। मेरे कार्यो को परिवार के सदस्य समर्थन दें, यह मेरी इच्छा जरूर है, परन्तु पहले मुझे परिवार के कार्यो को समर्थन देना हे। परिवार के सदस्य खुद-खुद के सबध से मेरे प्रति वफादार रहें, यह मेरी इच्छा जरूर है, परन्तु इससे पहले समस्त परिवार के प्रति मुझे वफादारी निभानी है।'

श्रद्धा,

यह अभिगम आत्मसात् किए बिना सही अर्थो में न तो हम किसीके बन सकते हैं और न ही किसीको अपना वना सकते हं। एक बात पूछुं? पिछ्ले पत्र में तुमने दो हाथों से ताली बजने की बात लिखकर जिस हकीकत की ओर इशारा किया हैं, वह मं बराबर समझ तो गया हूं, परन्तु उसका तात्पर्यार्थ तुम समझीं हो? मान लो कि तुम्हारी सासु बाघनी जैसी है, तो उसके सामने तुम्हें डायन ही बनना है न? मान लो कि तुम्हारा पति व्यभिचारी हं, तो उसके सामने तुम्हें वेश्या जैसा ही बनना है न?

मान लो कि तुम्हारी ननद कामचोर है, तो उसके सामने तुम्हें दिलचोर ही वनना है न? मान लो कि तुम्हारे ससुर निन्दाखोर हे, तो उनके सामने तुम्हें चुगलीखोर ही वनना हे न?

याद रखना,

सामनेवाला अच्छा हो, तो ही मुझे अच्छा बनना हो, तो इसका अर्थ यही होता है कि मुझे कैसा बनना चाहिये, इसका निर्णय मेरे हाथ में नहीं, परन्तु सामनेवाले व्यक्ति के हाथ में है।

यदि सामनेवाला व्यक्ति खराब है, तो मुझे खराब ही रहना है और सामनेवाला व्यक्ति भी अच्छा हो, तो ही मुझे अच्छा बनना है। क्या बताऊँ तुम्हें? अज्ञानी जगत ने इस गणित को तो अपने जीवन का चालकबल बनाया है।

सासु बुरी हो, तो उसके सामने बहू भी बुरी ही बनी है। पिता के क्रोधी स्वभाव के सामने पुत्र ने भी क्रोधी स्वभाव ही अपनाया है। व्यापारी के गलत व्यवहार के सामने ग्राहक ने भी गलत व्यवहार ही दिखाने का निश्चय किया है। पति के अहं के सामने पत्नी ने भी अपने अहं को टकराने का अभियान शुरू कर ही दिया है। मम्मी के जुल्मों के सामने पुत्र ने भी उद्धत बनने का निश्चय कर ही लिया है।

श्रद्धा,

कौन-सी राह अपनायी जाय, यह तुम निश्चित कर लेना। सासु अपना स्वभाव सुधारना ही न चाहे और इसीलिये तुम्हें भी अपना स्वभाव बिगडा हुआ ही रखना हो, तो अशान्ति, संताप, क्लेश, संक्लेश, उद्वेग या संबंध विच्छेद की कोई फरियाद मत करना।

गुंडे के सामने गुंडागीरी ही करना चाहनेवाले को प्रसन्नता की अपेक्षा रखनी ही नहीं होती, तो फिर गलत स्वभाववाले के सामने गलत स्वभाव ही रखना चाहनेवाला प्रसन्नता की अपेक्षा कैसे रख सकता है? गेंद तेरे मैदान में ही है।

क्रोध के सामने क्रोध बताकर या तो तुम जान पाओ या फिर क्रोध के सामने प्रेम दिखाकर तुम सामनेवाले का दिल जीत लो। चयन तुम्हें करना है।



महाराज साहेब,

आपका पिछ्ला पत्र पढा।

वह पढकर मन में सच में ही तुमुल युद्ध शुरु हो गया है। एक मन कहता है कि सामनेवाला यदि अक्कड ही है, तो तुम्हें नरम बनने की कोई आवश्यकता नहीं और दूसरा मन कहता है कि सामनेवाले व्यक्ति के चाहे जैसे अक्कडपन के सामने भी तुम्हें तो नम्रता ही रखनी है।

एक विनती करुँ आपको? मुझे कौन-सा अभिगम अपनाना ह, इसकी स्वतत्रता आप मुझे मत दीजिये। आप ही मेरे लिये कोई अभिगम निश्चित करके बताईये। क्योंकि

शराब पीनी या नहीं, यह यदि शराबी पर छोड़ दिया जाय, तो शराबी को ही गँवाना पड़ता है, तो गलत स्वभाववाले के सामने गलत स्वभाव रखना या सम्यक् स्वभाव रखना, इसका निर्णय मुझ जैसी बरसों से उद्धत, उद्दण्ड व उच्छृंखल के हाथों सोंपने में मुझे ही गँवाना पडेगा।

नहीं, मेरे हित के खातिर भी आप मुझ पर पसद मत छोडिये। मे आपका यह उपकार कभी नहीं भूलुँगी।

श्रद्धा,

तुम्हारे दिल के समर्पणभाव को पत्र में झलकता देखकर मे अत्यन्त आनंदित तो हुआ ही, परन्तु मैं विचार करने को मजबूर हो गया। तुमने यदि तुम्हारे जीवन के लिए अभिगम की पसद का अधिकार मुझे सोंप दिया है, तो मुझे भी मेरे जीवन के लिए अभिगम की पसन्द का अधिकार मेरे हाथ में क्यों रखना चाहिये? मुझे भी यह अधिकार मेरे उपकारी गुरुदेव को क्यों नहीं सोंप देना चाहिये? मे तुम्हारा आभारी हूँ कि तुमने मुझे भी उपकारी के प्रति समर्पित बनने के लिये उत्साहित कर दिया।

अब आयें अपनी मूल बात पर। 'ताली एक हाथ से नहीं, दो हाथों से बजती है,' यह बात तुमने मुझे एक पत्र में लिखी ह न? इसके सदर्भ में एक बात करुँ?

ताली बजने में दो हाथ ही चाहिये, यह बात सच है,
परन्तु दो हाथों में से एक हाथ गीला हो व दूसरा हाथ सूखा हो, तो भी ताली बज सकती है, यह तो तुम्हें पता हे न?
बस, इसी न्याय से संवंध टिकाने के लिये दो व्यक्तियों की जरूरत पडती है, यह बात सच हे, परन्तु इसमें एक व्यक्ति का हृदय स्निग्ध हो और दूसरे व्यक्ति का हृदय रुक्ष हो, तो भी संबंध बंध सकते हैं व वंधे हुए संवंध टिक सकते हैं, यह बात तुम्हें पता है?
मानता हूँ, तुम्हारी सासु का हृदय रुक्ष है,
तुम तुम्हारा हृदय स्निग्ध बनाकर उसके साथ संवंध बांध सकती हो। मानता हूँ, तुम्हारी सासु की जीभ में कडवाहट हे,
तुम तुम्हारी जीभ में मधुरता रखकर उनके दिल को जीत सकती हो। मानता हूँ,
तुम्हारी सासु दंभी है,
तुम सरलता दिखाकर उनके दंभ को परास्त कर सकती हो।
मानता हूँ, तुम्हारी सासु शक्की है,
तुम श्रद्धाशील बनकर उनकी शंका को पराजित कर सकती हो।
मानता हूँ, तुम्हारी सासु निन्दाखोर हे,
तुम गुणानुरागी बनकर उनके निंदाखोर स्वभाव को चुनौती दे सकती हो।
यह गणित वास्तविक वन सकता हे,
यदि तुम स्वयं को अपनाने लायक अभिगम पर अमल करने की तत्परता वताने में कटिवद्ध वनना चाहो तो!
श्रद्धा,
यह वात तुम्हारे मन की दीवार पर खुदवा दो कि
जिनके साथ हमारा जमता नही, वहीं हमें अपनी प्रेमशक्ति प्रकट करनी है।
शुरू करो यह प्रयोग।
सुखद परिणाम देखकर तुम झूम उठोगी।

महाराज साहेब,

४०

आपने तो गजब की बात लिख दी।
एक हाथ गीला हो और दूसरा हाथ सूखा हो, तो भी
ताली बजाने में कोई बाधा नहीं पहुँचती,
तो एक हृदय सवेदनशील हो ओर दूसरा हृदय संवेदनहीन हो,
तो भी संबंध टिकाये रखने में कोई बाधा नहीं पहुँचती।
हालॉकि, आपकी यह बात सच है,
इस पर अमल करना भी संभव है, फिर भी मेरे लिये यह
बहुत बडी चुनौती हो, ऐसा मुझे लगता है। एक बात कहुँ?
मुझे मालुम नहीं पडता, परन्तु में दूरवालों को प्रेम दे सकती हूँ।
दोषग्रस्त जीवन होने पर भी दूरवालों को चाह सकती हूँ।
कर्कश स्वभाव होने पर भी मैं मेरी पडोसन के प्रति सद्भाव
टिका सकती हूँ, परन्तु न जाने क्यों, परिवार के सदस्यों को
ही प्रेम नहीं दे सकती। उनके साथ ही आत्मीयता का संवन्ध
नहीं जोड़ सकती। उन सबको ही हृदय में स्थान नहीं दे सकती।
क्या इस अभिगम के पीछे मन की कोई चालवाजी होगी?

श्रद्धा,

जरूर।

नजदीकवालों की जवाबदारी से छूटने के लिए ही मन,
दूरवालों के प्रति प्रेम जमाने के लिये लालायित बन जाता है।

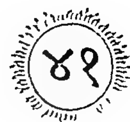
सासु के प्रति तुम प्रेम रखोगी, तो उनकी आवश्यकताओं
का तुम्हें ध्यान रखना पडेगा। उनके बीमार पडने पर तुम्हें
उनकी सेवा में सदा तत्पर रहना पडेगा। उनकी सब आज्ञाओं
का पालन तुम्हें करना ही पडेगा। उनकी इच्छाओं का तुम्हें
ध्यान रखना पडेगा।

जबकि

पडोसन के प्रति प्रेम रखने में तुम्हें ऐसा कुछ नहीं करना पड़ता।
उसकी बीमारी का पता चलने पर भी तुम्हारा मन तुरन्त ही
तुम्हें कह देता है कि

'इसकी सेवा की जवाबदारी इसके कुटुंब की है, तेरी नहीं।'
उस पर कोई दुःख या संकट आने पर तुम्हें पता तो चल जाता है, परन्तु मन तुरन्त ही कह देता है कि 'तुझे आश्वासन देने जाना हो, तो कोई हर्ज नहीं। बाकी, इसके दुःख को दूर करने का काम तो इसके परिवारजन करने ही वाले है।'
क्या बताऊँ तुम्हें?
कहीं-कहीं पर प्रेम को पानी की उपमा दी गयी है।
पानी का स्वभाव तुम्हें पता है न?
वह बहते-बहते काफी दूर तक ज़रूर जाता है, परन्तु वह जहाँ से बहना शुरू करता है, वहाँ के नजदीक के गड्ढे पहले भर देता है। आगे के गड्ढे भी भरने की उसकी तत्परता जरूर है, परन्तु नजदीक के गड्ढों को खाली रखकर आगे के गड्ढों को भरने के लिये वह बिलकुल तत्पर नहीं। यदि तुम्हारा अन्तःकरण सचमुच प्रेमसभर है, तो तुम्हारे जीवन में इस अभिगम का अमल क्यों नहीं? माना कि, तुम्हारा प्रेम जगत के छोटे-से छोटे जीव तक पहुँचना चाहिये, परन्तु अत्यन्त नजदीक रहे हुए परिवारजनों के प्रति तुम्हारे प्रेम में कडाका क्यों?
उनके प्रति सद्भाव के बदले दुर्भाव क्यों?
उनके प्रति प्रेम के बदल द्वेष क्यों?
उनके प्रति आदरभाव के बदले उपेक्षाभाव क्यों?
उनके दर्शन से प्रसन्नता के बदले उग्रता क्यों?
याद रखना,
तुम्हें व मुझे, **सबको प्रभुप्रिय ज़रूर बनना है, परन्तु प्रभुप्रिय बनने से पहले लोकप्रिय बनना है;** और **लोकप्रिय बनने से पहले परिवारप्रिय बनना है।**
परिवार में अप्रिय बने रहकर, परिवार के प्रति मन में द्वेषभाव रखकर लोकप्रिय बनने में दंभ के रास्ते में शायद सफलता मिल जाय, फिर भी प्रभुप्रिय बनने में सफलता मिलने की कोई संभावना नहीं।

महाराज साहेब,



आज तक आपके इतने पत्रों में से एक भी पत्र ने मेरे अन्तर में जो हलचल न मचायी, वह हलचल आपके पिछले पत्र ने मचायी है।

आपकी बात बिल्कुल सही है।

नजदीक के गड्ढों को भरे बिना पानी आगे बहता ही नहीं। प्रेम भी इस पानी के जैसा ही है। वह नजदीकवालों पर बरसे बिना दूरवालों पर बरसने के लिये तत्पर बनता ही नहीं।

शादी के बाद के मेरे जीवन पर दृष्टिपात करती हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि इस मामले में मेंने धोखा ही खाया है। सासु के साथ बात करने के लिये मैंने कभी वक्त ही नहीं निकाला, परन्तु सहेलियों के साथ फोन पर बातें करने के लिये मेंने कई घटे बिगाडे हैं। छोटी ननद के साथ मेंने आत्मीयता सभर व्यवहार किया ही नहीं और पडोसन की उसी उम्र की पुत्री को भरपूर प्रेम दिया है। मेरे ससुरजी की बीमारी को मेंने कभी गंभीरता से लिया ही नहीं और मेरे पप्पा को सिर्फ सर्दी-जुकाम होने के समाचार मिलते ही मैं तुरन्त मायके दोडती हूँ। मेरे देवर ने सी.ए. की परीक्षा में अच्छे अक पाये, फिर भी उसका मुँह मीठा नहीं कराया और मेरे भाई ने मेट्रिक की परीक्षा में अच्छे अक पाये, तो मेंने उसके लिये महंगी मिठाई का पेकेट भेजा। आज पता चल रहा हे कि में परिवार में अप्रिय क्यों बनी रही हूँ? ससुराल में मेरा घर वनाने पर भी ससुराल में मे क्यों सबका प्रेम नहीं पा सकती? ससुराल में गधे की तरह काम करने पर भी किसीको क्यों मेरी कद्र करने का मन नहीं होता?

कहाँ से होगा?

वेतन छगनभाई से लेना और

वफादारी मगनभाई की रखना, ऐसी वृत्ति रखनेवाला नौकर

छगनभाई का प्रेम नहीं ही पा सकता, यह समझा जा सके ऐसी बात है, तो रहना ससुराल में और वफादारी रखनी मायके की, ऐसी वृत्ति रखनेवाली वहू ससुराल का प्रेम नहीं ही पा सकती यह भी बिल्कुल समझी जा सके, ऐसी ही बात है।

हालाँकि,

आपके साथ इतने लंबे पत्रव्यवहार के बाद मेरे रूख व मेरे वर्तन में मैं काफी परिवर्तन ला सकी हूँ।

फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मुझे अभी भी बहुत परिवर्तन करना बाकी है।

क्योंकि

मैंने अत्यन्त दिलचस्पी लेकर गलत अभिगमों को पुष्ट किया है। बुद्धि को आक्रामक बनाकर प्रेम के नाजुक पुष्प को मैंने कुचल डाला है। प्रेम के शिखर पर से उपकारियों ने जो बातें कहीं, उन्हें मैंने बुद्धि की तलहटी पर खडे रहकर तोडने की नादान चेष्टा की है। वे सब संस्कार एक धडाके में तो कैसे साफ हो जायेंगे? वे सब वृत्तियाँ एक ही धडाके में कैसे रवाना होंगी? फिर भी

आज आपके पास इतना तो जरूर स्वीकार करूँगी कि जीवन को समझने की कला शायद मेरे पास थोडी-बहुत थी, परन्तु जीवन को प्रसन्नता से भरपूर रखने की कला तो आपसे ही सीखने मिली है। आपके पास ऐसे आशिष चाहूँगी कि बारह-बारह वर्ष के भयंकर अकाल के बीच भी सागर की लहरों की आवाज बिल्कुल कम नहीं होती, तो इसी प्रकार प्रेम मिलने के मामले में शायद मेरे लिये अकाल की परिस्थिति आये, फिर भी मेरे हृदय में बहते हुए प्रेम के सागर की लहरों की चहल-पहल बिल्कुल कम न हो। किसी शायर द्वारा की गयी 'जिंदगी' की यह व्याख्या मुझे जरूर महसूस करनी है।

'दीवार में चुनता रहे, जालिम जमाना फिर भी;
धैर्य की दरार में से, चमचमाये वह है ज़िंदगी।'

श्रद्धा,



तुम्हारा पत्र पढकर मैं खुश हो गया।
मं परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम पर
ऐसी कृपा बरसाये कि प्रेमसभर हृदय व प्रसन्नतासभर
जिन्दगी जीने के तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करने का सत्त्व
तुममें प्रकटाये। हालाँकि,
एक बात का स्पष्टीकरण करना मुझे जरूरी लगता है।
तुम्हारी उम्र की प्रत्येक युवती को सतत यही महसूस हुआ
करता है कि स्वभाव बदलने की बात हो या
बर्ताव सुधारने की बात हो,
बुद्धि को ठिकाने लाने की बात हो या
विचारधारा को सम्यक् बनाने की बात हो,
हर बात में 'बहू' को ही सलाह क्यों दी जाती होगी?
'सासु' को कुछ क्यों नहीं कहा जाता होगा?
'सासु' को केन्द्र में रखकर पुस्तक क्यों नहीं लिखी
जाती होगी? 'सासु के कर्तव्य', इस विषय पर परिसवादों
का आयोजन क्यों नहीं होता होगा? इसका जवाब वैसे
तो कई प्रकार से दिया जा सकता है, फिर भी एक
छोटे-से उदाहरण से इसका जवाब इस पत्र में मैं तुम्हें
देना चाहूँगा।
तुमने हरा दातुन देखा है?
दातुनवाला उसे सीधा करने का
प्रयत्न करता है, तो आसानी से वह सीधा हो जाता है,
परन्तु वह दातुन सूख जाने के बाद दातुनवाला उसे
सीधा करने का प्रयत्न करने जाता है, तो वह दातुन
सीधा तो नहीं होता, परन्तु टूट जाता है।
तात्पर्यार्थ स्पष्ट है।
युवावस्था है हरे दातुन जैसी,
जबकि प्रौढावस्था या वृद्धावस्था है - सुखे हुए दातुन जैसी।

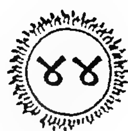
युवावस्था अपने में सम्यक् परिवर्तन करने के लिए जितनी सक्षम है, उतनी सक्षम वृद्धावस्था है ही नहीं।
इस सत्य का इन्कार कोई नही कर सकता।
मैं तुमसे ही पूछता हूँ।
किसी भी क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तन के प्रयासों में सफलता किसे मिलती है? शक्तिमान को या अशक्तिमान को?
सम्यक् समझ आने के बाद भी परिवर्तन कौन कर सकता है?
शक्तिमान या अशक्तिमान?
परिवर्तन को चिरस्थायी बनाने का यश किसे मिलता है?
शक्ति को या अशक्ति को?
तुम्हें कहना ही पडेगा कि शक्ति के बिना परिवर्तन सभव ही नहीं। यदि हकीकत यही है, तो फिर सुधरने की सलाह, वर्तन को सम्यक् बनाने की सलाह, सहन करने की सलाह बहू को ही दी जाय, सासु को नहीं, इसमें भला आश्चर्य कैसा?
इसमें दलीलबाजी को अवकाश ही कहाँ?
मैं तो तुमसे कहता हूँ कि
तुम अपने जीवन का निर्माण अभी इतना सुन्दर कर दो
कि बहू के रूप में तो तुम परिवार प्रिय बनो हो,
परन्तु आगे चलकर
प्रोढावस्था या वृद्धावस्था में जब सासु बनने का अवसर आयेगा, तब भी तुम परिवार प्रिय बनी रहो। नहीं, इसके सिवाय तुम मुझसे कोई और अपेक्षा रखती हो, तो उसमें सफलता मिलनेवाली नहीं। मेरी मान्यता तो बिल्कुल स्पष्ट है।
सुख की बात आये, वहाँ अन्य से शुरूआत करने की छूट है, परन्तु 'गुण' की या 'हित' की बात आये, वहाँ तो शुरूआत स्वयं से ही करनी है।
पढी है तुमने सुकरात द्वारा परमात्मा को की गयी यह प्रार्थना?
'हे परमात्मन्! इस जगत में तुम सबको अच्छा बनाना, परन्तु इसकी शुरूआत तो मुझसे ही करना।' संदेश स्पष्ट है।



महाराज साहेब,
आपका पिछला पत्र तीन बार पढा।
खूब शान्ति से व गंभीरता से पढा।
आपके पत्र में लिखी गयी बातों पर विचार करते हुए,
में इस निष्कार्ष पर पहुँची हूँ कि
यदि मुझे सबके बीच रहना है, सबको मेरा बनाकर रहना हे,
वातावरण को प्रसन्न बनाकर रहना है,
तो स्वभाव सुधारने की शुरूआत मुझे ही करनी है।
वाणी में मधुरता लाने की शुरूआत मुझे ही करनी हे।
दिल को प्रेमसभर वनाने की शुरूआत मुझे ही करनी हे।
सहनशील बनने की शुरूआत मुझे ही करनी हे।
आज तक में इस मामले में धोखा खा गयी थी।
'मेरे पास अच्छे वर्ताव की अपेक्षा रखने से पहले
सासु, ससुर, पति, ननद, देरानी, जेठानी
सबको अपना बर्ताव अच्छा वना देना चाहिये।
स्वय को रहना है, कॉच के घर में आर
मुझे सलाह देनी है, पत्थर के घर में रहने की।
इसका अर्थ क्या है?
यह थी मेरी मान्यता
ओर इसी मान्यता के आधार पर ही मेने मेरी सारी
जीवन-व्यवस्था वनायी थी।
सयुक्त कुटुब में सब अपना वर्तन कभी सुधारते ही नहीं,
सुधार सकते ही नहीं,
इस बात की मुझे जानकारी होने पर भी इसमें से वोधपाठ
लेकर मेने मेरा वर्तन सुधारने का कोई प्रयत्न ही नही किया
ओर नन्दनवन वन सकनेवाले मेरे घर को
मेने जगलतुल्य वना दिया।
स्वर्गतुल्य वन सकनेवाले
मेरे जीवन को मेने नरकतुल्य वना दिया।

मुझे घर में वस्तुयें व्यवस्थित रूप से रखना आया,
परन्तु मन में विचारों को व्यवस्थित रूप से रखना न आया।
मुझे दूध में शक्कर डालना आया, परन्तु संबंधों में
स्नेह मिलाना न आया। मुझे पुस्तक पढना आया, परन्तु
परिवार का दिल पढना न आया। गरम पानी ठंडा करने
की कला मेंने सीखी, परन्तु परिवार के गरम मगज को ठंडा
करने की कला मे नहीं सीख पायी। फोन द्वारा अमेरिका में
रहनेवाली सहेली के साथ मैं आत्मीयता टिका सकी, परन्तु
मधुर बातों द्वारा घर में ही साथ रहनेवाले परिवार के सदस्यों
के साथ मैं आत्मीयता टिका नहीं पायी।
गेहूँ में से कंकर दूर करना मुझे आया, परन्तु
सासु में रहे हुए दोष देखना बन्द करना मुझे न आया।
कचरा निकालकर घर को स्वच्छ रखना मुझे आया,
परन्तु परिवार के दोषों को भूलते रहकर मन को प्रसन्न
रखना मुझे न आया। कम्प्यूटर की भाषा समझने में
मुझे सफलता मिली, परन्तु परिवार के सदस्यों
की भाषा समझने में मैं मार खा गयी।
सज-धजकर घर से बाहर जाना मुझे आया, परन्तु
हँसते रहकर घर में जीना मुझे न आया।
गुड के माध्यम से बिखरे हुए सेकडों तिलों को तिलपापडी
बनाकर एक साथ जोडना मुझे आया, परन्तु
वात्सल्य व प्रेम के माध्यम से विभिन्न विचारधाराओंवाले
परिवार के सदस्यों को एक साथ जोडना मुझे न आया।
महाराज साहेब,
आज एहसास हो रहा है कि सिर्फ घर में रहने से
घर रहने लायक नहीं बन जाता, घर को रहने लायक
बनाने के लिये तो मन को ही सुधारना पड़ता है।
यदि झाडू ही कीचड़ से सना हो, तो उससे घर साफ नहीं होता।
यदि मन ही बिगड़ा हुआ हो, तो उससे घर स्वर्ग नहीं बनता।

श्रद्धा,



तुम्हारा पिछ्ला पत्र पढते हुए ऑखें भर आयीं।
तुम्हारे पाक दिल के एकरार ने तुम्हारे प्रति मेरे सद्‌भाव में अभिवृद्धि कर दी। सचमुच तुम्हारा पिछ्ला पत्र पढते हुए ऐसा एहसास हुआ कि तुम्हारी वुद्धि निर्मल वन रही है। तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र बन रहा है। तुम्हारा हृदय निर्दोष बन रहा है। मैं इतना ही कहुँगा कि कसाई के घर में रहकर कोमलता के भाव टिकाये रखना शायद आसान है, परन्तु संवेदनहीन बने हुए इस जगत के बीच में रहकर संवेदनशील बने रहने के आदर्श को पकडकर रखना अत्यन्त कठिन है। सफलता की ही मांग करते हुए वातावरण के वीच रहकर सरसता को आत्मसात् करने के मार्ग पर कदम रखना अत्यन्त कठिन है।

दुःख को ही दुश्मन मानते हुए जगत के बीच रहकर दोष को ही दुश्मन मान लेने की मान्यता को अस्थिमज्जा बनाने का काम अत्यन्त कठिन है।

फिर भी
तुमसे मुझे आशा है।
कम्प्यूटर इंजीनियरिंग की जवरदस्त चुनौती तुमने हॅसते-हॅसते स्वीकारी है,
उस पर से ऐसा लगता है कि
स्नेहमयी गृहिणी, आदर्श बहू, वात्सल्य, स्नेह व सद्‌भाव के दान द्वारा सच्ची गृहलक्ष्मी बनने की व कुटुंव के बगीचे को प्रेम के जल से हरा-भरा रखने की चुनौती स्वीकारने में तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।
हालॉकि,
अग्नि को समझना आसान है, क्योंकि उसका जलने का स्वभाव नियत है। मक्खन को समझना आसान है, क्योंकि उसका कोमलता का स्वभाव निश्चित है।

परन्तु मन को समझना अत्यन्त मुश्किल है, क्योंकि
उसका कोई स्वभाव ही नियत नहीं।
आज किसी पर जान न्यौछावर करने को तैयार मन,
कल उसीकी जान लेने के लिये भी तत्पर बन सकता है।
आज प्रेम की गंगा बननेवाला मन, कल द्वेष का नाला बन
जाय, तो भी आश्चर्य करने जैसा नहीं। आज प्रसन्नता के
गगन में विचरण करता हुआ मन कल उद्विग्नता की खाई
में तडपने लगे तो इसमें अचंभा करने जैसा नहीं।
पढ़ी है तुमने किसी कवि की ये पंक्तियाँ?
'धधकती दुपहर में नाचे, शाम ढले मुरझाता,
कंटक के संग प्रीत करे और पुष्पों से शर्माता,
रे मन! तू ही नहीं समझ में आता।'
इसी गीत की आगे की पंक्तियाँ भी पढने जैसी हैं।
'लोहे की जंजीरों से जो, पल भर नहीं बँधाता,
प्रेम के कच्चे धागों से जो, जीवनभर जकड़ाता,
रे मन! तू ही नहीं समझ में आता।'
यह बात मुझे इसलिये लिखनी पड़ रही है कि
आज एकदम समझदार बने हुए तुम्हारे मन पर
तुम हमेशा के लिये विश्वास न रख बैठो।
नहीं, कल का बिगड़ा हुआ तुम्हारा मन आज सुधर गया है,
तो आज का सुधरा हुआ तुम्हारा मन कल बिगड़ भी सकता है
हाँ, तुम्हारी सावधानी बराबर हो, जागृति पूरी हो, गलत निमित्तों
का असर नहीं ही लेने की तुम्हारी पूर्ण तत्परता हो, अहं को
वजन नहीं ही देने का तुम्हारा संकल्प मजबूत हो, तो आज
के सुधरे हुए तुम्हारे मन को तुम कल इससे भी अधिक सुधरा
हुआ बना सकती हो। मेरी शुभेच्छा है कि मन की इस विचित्रता
को बराबर समझकर आज तुम मन में जो स्वर्ग पैदा कर सकी हो
उस स्वर्ग को नरक में रूपान्तरित कर देनेवाले एक भी निमित्त के
आगे घुटने टेकने की निःसत्त्वता कभी भी तुममें न आये।

महाराज साहेब,



आपका मैं खूब-खूब आभार मानती हूँ कि आपने मन के सतत रंग बदलते हुए गिरगिट जैसे स्वभाव की मुझे स्पष्ट जानकारी दे दी। आपकी यह बात बिल्कुल सही है कि मन के किसी भी प्रकार के अच्छे या बुरे अभिगम को कायमी माना नहीं जा सकता। फिर भी एक बात पूछुँ? मन के अच्छे अभिगम को कायमी बनाने में चाहे सफलता न मिले, परन्तु स्थिर रखने में तो सफलता मिल सकती है न? यदि मिल सकती है, तो आप इसका उपाय बतायेंगे?

श्रद्धा,

तुम मंदिर तो रोज जाती हो न?

तुमने देखा होगा कि मंदिर के भंडार पर अथवा किसी टेबल पर एक ऐसा दीपक जगमगाता है, जो शाम को अथवा रात को बुझ जाता है। परन्तु एकाध कोने में एक ऐसा दीपक भी जगमगाता है, जिसे अखंड दीपक कहा जाता है।

अखंड दीपक अर्थात्?

ऐसा दीपक जिसकी बुझने की संभावना होने पर भी वह बुझ न जाय, इसकी पूरी सावधानी एक ओर रखी जाती है, तो दूसरी ओर उसमें सतत तेल पूरा जाता है।

बस,

तुमने जो प्रश्न पूछा है, उसका यही जवाब है।

मन के सम्यक् अभिगम को यदि स्थिर बनाना हो, तो उसे गलत निमित्तों से बचाकर रखना पड़ता है।

मान लो कि आज तुम्हारे हृदय में प्रतिष्ठित हुए परिवार के प्रति सद्भाव को तुम्हें स्थिर बनाना है, तो एक ओर तुम्हें अपने वर्ताव को सम्यक् बनाकर ही रखना होगा, तो दूसरी ओर परिवार के गलत वर्ताव को भूलते रहने की उदारता रखनी ही पडेगी।

इन दो बातों में से यदि तुम एक भी बात की अवहेलना करने लगो, परिवार के प्रति तुम स्वयं गलत बर्ताव करने लगो या परिवार के गलत बर्ताव का तुम हिसाब रखने लगो, तो परिवार के प्रति तुम्हें आज जो सद्‌भाव है,
उसमें कल फर्क पड़े बिना नहीं रहेगा। गणित स्पष्ट है। यदि सावधानी रखने की पूरी तैयारी है, तो दीपक को अखंड जलता रखने में सफलता मिल सकती है और यदि लापरवाही बरतनी है, तो जलता हुआ दीपक किसी भी पल बुझ सकता है।
श्रद्धा,
तुम्हारा नाम ही श्रद्धा है,
तो मुझे भी तुम पर श्रद्धा है कि
अपने रूख को सम्यक् बनाने के बाद तुम जिस प्रसन्नता की अनुभूति फिलहाल कर रही हो, उस अनुभूति की मस्ती का अनुभव सतत करने के लिये तुम तुम्हारे रूख को कदापि असम्यक् नहीं बनाओगी। हालॉकि,
इसके लिये मैं तुम्हें एक छोटा-सा सूचन करना चाहता हूँ, उस पर गंभीरता से विचार करना। तुम बाजार में कभी तो मटका खरीदने गयी होओगी न? उस वक्त टकोरा मटके को लगाया था या कुम्हार को? तुम्हारा जवाब स्पष्ट होगा। मटका खरीदते वक्त टकोरा मटके को ही मारा था, कुम्हार को नहीं। बस, तुम संयुक्त परिवार में फिलहाल रह रही हो। परिवार के सदस्य आए दिन तुम्हें तरह-तरह की सलाहें दिया करते होंगे और भविष्य में भी देते रहेंगे। तुम एक ही काम करना। इन सलाहों पर ध्यान केन्द्रित करना। हो सके वहाँ तक सलाह देनेवाले पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास मत करना।
कुम्हार बीमार हो, तो भी मटका मजबूत हो सकता है, सलाह देनेवाले का जीवन बराबर न हो, तो भी उसकी सलाह हमारे जीवन के दीदार बदलने में सक्षम हो सकती है।
मेरे कथन का अभिप्राय तुम समझ पायी हो न?

महाराज साहेब,



आपने तो मेरी दुखती रग छेड दी!
मेरा बरसों से यही आग्रह रहा है कि
मुझे जो भी सलाह देनी हो, दो परन्तु इससे पहले
उस सलाह का अमल अपने जीवन में करके दिखाओ।
मुझे सहनशील बनने की सलाह देनी है और आपको
आक्रोश-भरी भाषा में ही बात करनी है! मुझे दूसरों
की भूल भूल जाने की सलाह देनी है और आपको
मेरी एक-एक भूल याद रखनी है! सबके दिल संभालते
रहने की सलाह आपको मुझे देनी है और आपको सतत
मेरे दिल को ठेस पहुँचाते रहना है। यह हर्गिज नहीं चलेगा।
आज तक मेरी यही मान्यता थी, परन्तु आपने अत्यन्त
बढिया समाधान दे दिया। टकोरा मटके को ही मारना,
कुम्हार को नहीं। ध्यान सलाह की ओर ही केन्द्रित करना,
सलाह देनेवाले की ओर नहीं! इतना बढिया समाधान देने के
लिये आपका खूब-खूब आभार। मुझे ऐसा लगता है कि इतने
लंबे पत्रव्यवहार में आपने मुझे स्वस्थ, मस्त व प्रसन्न रहने के
ढेर सारे समाधान दे दिये हैं। इन समाधानों के सहारे मेरी
स्वस्थता व प्रसन्नता टिकाने के लिये अब मुझे प्रयत्नशील
बनना है। फिर भी आपसे विनंती करती हूँ कि अभी भी
मेरे रूख में या मेरे वर्तन में कोई परिवर्तन करने जैसा
आपको लगे, तो आप अवश्य सूचित करने की कृपा करें।

श्रद्धा,

अधिक तो क्या कहुँ? परन्तु एक बात खास कहना चाहुँगा
कि **सब संबंध सच बोलने से नहीं टिकते, परन्तु अच्छा
बोलने से ही टिकते हैं। यह बात संयुक्त कुटुंब में रहनेवाले
प्रत्येक व्यक्ति को सतत नज़र के समक्ष रखनी चाहिये।**
मेने ऐसे कई कुटुंब देखे है, जहॉं सच ही बोलने के आग्रह
ने इन्सान-इन्सान के बीच के मीठे संबंधों को भी कडवा

बना दिया है। सासु ने वहू को उसकी सच्ची भूल ही बतायी है, फिर भी वहू के दिल में सासु के प्रति सद्भाव नहीं रहा। पत्नी ने पति को उसके गलत वर्ताव के लिये ही सावधान किया है, फिर भी पति ने हमेशा के लिये पत्नी से मुख मोड दिया है।

पति ने पत्नी को सुधरने की सच्ची ही सलाह दी है, फिर भी पत्नी ने अपने दिल में पति के लिये गलत पूर्वग्रह बांध दिया है। अरे, दूर की बात क्या करें?

इस समस्त पत्रव्यवहार में तुमने मेरे साथ कोन-सा अभिगम अपनाया है?

सच्चे का!

और मेंने तुम्हारे साथ कोन-सा अभिगम अपनाया है?

अच्छे का!

तुम्हारी फरियादें जरूर सच्ची थीं, तुम्हारा आक्रोश जरूर सच था, तुम्हारी वेदना जरूर सच्ची थी, तुम पर हो रहे अन्यायों की वात भी ज़रूर सच्ची थी, परन्तु इन सबमें डंक था, व्यक्तियों के प्रति दुर्भाव था, तुम्हारा खुद का अहं था, कदाग्रह था, हठाग्रह था, पूर्वग्रह था और इसीलिये तुम्हारी इन सच्ची फरियादों को भी मेंने वहुत वजन न दिया।

हालाँकि,

मैंने तुम्हें जो भी समाधान दिये, उन समाधानों में तुम पर अन्याय न हो जाय, इसकी सावधानी मेंने जरूर रखी है, तुम्हारा दिल टूट न जाय, इसका ध्यान मेंने जरूर रखा है, फिर भी

अनजान में भी मेरे दिये गये समाधानों से तुम्हारे नाजुक दिल को ठेस पहुँची हो या तुम्हारी भावनाओं को धक्का पहुँचा हो, तो अन्तर से क्षमा चाहता हूँ, मिच्छामि दुक्कडम् मांगता हूँ। तुम मुझे क्षमा करोगी तो सही न? मिच्छामि दुक्कडम् दोगी तो सही न?

४७

महाराज साहेब,

आपके पिछले पत्र से मेरा दिल काफी हल्का तो हो गया है, परन्तु आपके इस पत्र की अन्तिम चार पंक्तियाँ पढने के बाद तो मेरा दिल काँप उठा है। मेरे आँसू थमने का नाम ही नहीं ले रहे। आप मुझसे क्षमा माँग रहे हैं? आप मुझसे मिच्छामि दुक्कडं माँग रहे हैं?

अहं, आवेश व आक्रमण की गंदगी में ही फँसी हुई और उसीमें जीवन की सफलता मानी बैठी हुई मुझे आपने इसमें से कितने प्रेम, स्नेह व वात्सल्य से बाहर निकाला है। बाहर से क्लेश और अन्दर से संक्लेश, इसके सिवाय मेरे जीवन में ओर था ही क्या?

छूट से मंतव्य देते रहकर, छुट से दुश्मन पैदा करते रहने के सिवाय मैंने इस जीवन में और किया ही क्या था?

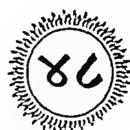
वर्चस्व को ही सर्वस्व मानकर उसीकी दोस्ती टिकाये रखने के प्रयत्न करने के सिवाय इस जीवन में मेंने और किया ही क्या था? अरे, पत्रव्यवहार की शुरूआत में तो में आपको भी दिखा देने के विचारों में ही रमती थी!

परन्तु आपने मेरी नालायकी पर कोई ध्यान न दिया।

अग्नि जिस सहजता से कचरे को जलाती जाती है, पानी का प्रवाह जिस सहजता से किनारे पर रहे हुए कचरे को साफ करता जाता है, सूर्य के प्रकाश की एक ही किरण जिस सहजता से घने अन्धकार को भी चीरती जाती है, उससे भी अधिक सहजता से व सरलता से आपने मेरे दिल में पडे हुए ईर्ष्या, आवेश, अहं, पूर्वग्रह आदि दोषों का कचरा दूर कर दिया और फिर भी आप मुझे ऐसा लिखते हें कि 'मेरे द्वारा दिये गये समाधानों से तुम्हारे नाजुक दिल को ठेस पहुँची हो, तो अन्तर से क्षमा माँगता हूँ।' महाराज साहेब! आपसे एक विनंती है। सिर्फ आज ही नहीं भविष्य में भी मेरा कोई गेरवर्तन आपके ध्यान में आये, तो उसके लिये कडक से कडक

हितशिक्षा आपको देनी पड़े, तो दीजियेगा।
कड़क से कडक सजा देनी हो, तो दीजियेगा, परन्तु
कभी भी क्षमा माँगने की बात मत लिखियेगा।
मुझे ऐसा लगता हे कि आप नारी के दिल को
पहचान नहीं पाये। पुरुष आकाश है, तो स्त्री धरती है।
किसान धरती को खोदता है, मटियामेट कर देता है,
परन्तु बदले में धरती किसान को धन-धान्यादि से निहाल
कर देती है। स्त्री का दिल तो ऐसा है।
उसे जिसकी ओर से प्रेम मिलता हे, भरपूर वात्सल्य मिलता
है, प्रचंड सद्भाव मिलता है, उसे तो वह अपने जीवन का
सर्वस्व समर्पित करने से भी नहीं हिचकिचाती।
सच बताऊँ?
पति से मिले प्रेम में मुझे फिर भी वासना के दर्शन हुए हें।
सासु से मिले प्रेम में मुझे फिर भी स्वार्थ के दर्शन हुए हें।
ससुरजी से मिले स्नेह मे मुझे फिर भी कर्तव्य के दर्शन हुए हे।
परन्तु
आपसे मिले प्रेम में तो मुझे सिर्फ मेरे हित के ही दर्शन हुए हें।
में इतनी तो नालायक नहीं कि आप जेसे हितकारक पूज्य
पुरुष के प्रति भी दुर्भाव रखुँ।
महाराज साहेब,
गद्गद् दिल से व दु.खी हृदय से आपको लिखती हूँ कि
मुझे आप नालायक जरूर मानना, पर इतनी नालायक तो
कभी मत मानना कि अपने हित की बात करनेवाले के प्रति
भी गांठ बॉधकर बैठनेवाले व्यक्ति का प्रतिनिधित्व में करती
होऊँ। आपको मैंने मेरे दिल में उस स्थान पर बिराजमान किया
है, जिस स्थान पर मेरे वर्तमान के एक संबंधी भी बिराजमान
नहीं। आपको मुझसे 'मिच्छामि दुक्कडं' मांगना नहीं होता,
मुझे आपके पास कृपावर्षा की याचना ही करनी होती है।
और वही मैं आपके पास मॉगती हूँ।

श्रद्धा,



तुम्हारे पत्र में व्यक्त होती हुई तुम्हारी योग्यता देखकर मैं आनन्दित हो गया। एक बात कहुँ? तुम्हारे अन्दर यह योग्यता थी ही, इसीलिये तो मैंने तुम्हारे साथ पत्रव्यवहार शुरू किया था। इस योग्यता को बाहर लाने के उद्देश्य से शुरू किये गये इस पत्रव्यवहार को इसके उद्देश्य तक पहुँचने में सफलता मिल गयी है।

इसका मुझे आज अपार आनन्द तो है ही, परन्तु विशेष आनन्द तो कल मुझे दर्शन व उसकी मम्मी के द्वारा तुम्हारे बारे में जो कुछ सुना, उससे हुआ है। तुम्हारी सासु की बातें उन्हीं के शब्दो में ..

'महाराज साहेब,

आज ऐसा लगता है कि श्रद्धा के दिल की महानता को समझने में मेंने सचमुच धोखा खाया है। वह जवानी में भी प्रेम की भाषा बोल सकती है, जबकि मैं अधेड़ उम्र की होने पर भी मेरे पास बची है सिर्फ अधिकार की भाषा। **प्रेम की भाषा के द्वारा वह सबके दिल जीत रही है, जबकि अधिकार की भाषा के द्वारा मैं सबके दिल में से स्थान खो रही हूँ।**

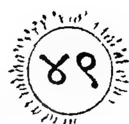
हालाँकि, उसमें आये हुए इस सम्यक् परिवर्तन का श्रेय आपसे मिले हुए सम्यक् मार्गदर्शन को जाता है। परन्तु इतना तो जरूर है कि वह बहू बनकर मेरे घर में आयी, तब भी उसमें पात्रता तो थी ही, परन्तु मेरे द्वारा उसके साथ किये गये कटुव्यवहार के कारण उसकी पात्रता ढँक गयी थी। खैर, आप मुझे ऐसे आशीर्वाद दीजिये कि श्रद्धा के जीवन में आज प्रकटे हुए गुण मुझमें भी प्रकट होने लगे। और हाँ, इतने वर्षो तक मैंने कर्कश भाषाप्रयोग द्वारा व विभिन्न प्रकार के गलत आक्षेप रखने के द्वारा मेरी सोने जैसी बहू के दिल को ठेस पहुँचाने का जो पाप किया है, उसका आप मुझे कठोर से कठोर प्रायश्चित्त भी दीजिये।'

श्रद्धा,
इतना बोलते-बोलते तो तुम्हारी सासु की आँखों में से आँसू बहने लगे। वह आगे कुछ न बोल पायी। मुँह नीचा करके हाथ में रहे हुए रुमाल से आँखों के आँसू सतत पोंछती रही। मम्मी के मुख मे अपनी पत्नी की यह प्रशंसा सुनकर दर्शन भी रो पडा। वह अश्रुभरी आँखों से इतना ही बोला,

महाराज साहेब!

यदि श्रद्धा पहले से ही नालायक होती, पहले से ही उसमें अपात्रता होती, तो आपका चाहे जैसा सुन्दर मार्गदर्शन मिलने पर भी उसमें योग्यता न प्रकटी होती। परन्तु नहीं, उसमें पात्रता व योग्यता तो पहले से ही थी। हमने ही उसके साथ गलत व्यवहार करके उसकी पात्रता को दबा दिया था। आपने सम्यक् मार्गदर्शन देकर उसकी पात्रता आज प्रकट कर दी है। श्रद्धा मेरी पत्नी है, इसीलिये उसकी प्रशंसा में नहीं करता, परन्तु उसने अपने जीवन को जो सुन्दर मोड दिया है, वह देखकर इतना तो जरूर कहता हूँ कि हमारे समस्त परिवार के लिये वह अब एक आदर्श बन गयी है, आदरणीय बन गयी है। आप शायद यकीन नहीं करेंगे, परन्तु चार दिनों पूर्व ही मेरे पप्पा ने मुझे अचानक ऑफिस से बुलाया, मैं आशंका के साथ ऑफिस से घर भागता आया। पप्पा के कमरे में प्रवेश किया। पप्पा रो रहे थे।
मुझे देखते ही उन्होंने अपनी आँखों के अश्रु पोंछ दिये व मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए इतना ही बोले,
'बेटे! हमारे घर से लक्ष्मी चली जाय, तो जाने देना, परन्तु सच्चे अर्थ में जो हमारी गृहलक्ष्मी बन गयी है, उस श्रद्धा को तू कभी घर से बाहर मत जाने देना। वह घर में होती है, तभी यह घर जीवंत हो, ऐसा मुझे महसूस होता है।' इतना बोलते-बोलते तो दर्शन भी रो पड़ा।

महाराज साहेब,



आपका पत्र पढते हुए में चौधार ऑसूओं से रो पडी। **शिल्पी की नज़र पड़ने से प्रतिमा बने हुए पत्थर को अपनी योग्यता का तनिक भी अभिमान करने की ज़रूरत नहीं, तो आपके सुंदर मार्गदर्शन से जीवन को सम्यक् मोड़ देने में कामयाब बनी हुई मुझे भी अभिमान करने की कोई ज़रूरत नहीं, यह में जानती हूँ।**

आभार तो में आपका मानती हूँ कि मेरे अन्त करण की पत्थर से भी जालिम कठोरता जानने पर भी आपने मुझे मार्गदर्शन के काबिल समझा। में नहीं जानती कि मेंने आपके इस विश्वास को कितना चरितार्थ किया है?

परन्तु इतना तो जरूर कहूँगी कि अब आगे की शेष जिदगी में आपने मुझ पर जो विश्वास रखा हे, उसका घात करने का पाप तो मैं हर्गिज नहीं करुँगी। और दूसरी वात, आपके पास आकर दर्शन व मम्मी ने मेरे लिये जो बातें की, वे पढकर तो में मेरे हृदय को कावू में न रख पायी। मम्मी अपने कमरे में बेठे-बेठे पुस्तक पढ रह थीं। में दोडती हुई उनके पास गयी और उनकी गोद में सर रखकर जोरों से रो पडी। मम्मी ने मुझे वात्सल्य से नहला दिया व मेरा सर उन्होंने ऊँचा किया। 'श्रद्धा,। मेरे सामने तो देख।' ओर मेंने मम्मी की ऑखों के सामने देखा।

उनकी ऑखों में मुझे वात्सल्य का सागर लहराता हुआ दिखा। कमर में खोंसा हुआ चावियों का गुच्छा निकालकर उन्होंने मेरे हाथ में सोंपते हुए कहा - 'आजसे इस घर का कारोवार तुझे सभालना है। इस घर में किसीको भी पेसे की जरूरत हो, तो उसे तुझे खुश करना पडेगा, तुझे प्रसन्न करना पडेगा। मे दर्शन से भी कह दुँगी कि तुझे पूरा मान-सन्मान दे।'

'मम्मी। इस अलमारी की चावियॉ आप मुझे दे या न दे, मुझे तो सबके दिल जीत लेने की चावियों का ही आकर्षण है।

वैसे तो ये चाबियाँ मुझे महाराज साहेब के पास से मिल ही गयी है, परन्तु आपको जब कभी ऐसा एहसास होने लगे कि श्रद्धा के पास रही हुई ये चाबियाँ इधर-उधर हो गयी है, तो आप मुझे ये चाबियॉ देते रहना।
इनका उपयोग करके मै सबके दिल में प्रवेश करती रहॅुगी।
और मम्मी! एक बात कहुॅ?
इस घर में आने के बाद के मेरे बीते बरसों पर नजर करती हॅू, तो मुझे स्पष्ट दिखायी देता है कि जवानी के नशे में और बुद्धि के अहंकार में मैंने आप सबको सतत तकलीफ ही दी है। आप मेरा बराबर ध्यान रखते थे, फिर भी मैंने सतत आपका दिल दुखाया है। पप्पा के स्नेह में कोई कमी नहीं थी, फिर भी अपने उद्धत स्वभाव के द्वारा मैंने उन्हें सतत उद्विग्न ही रखा है।
और दर्शन की तो क्या बात करुॅ?
उसके सौम्य स्वभाव का फायदा उठाकर मैंने उसे सतत अपनी आज्ञा में ही रखा है। उसके कोमल चित्त की मैंने उसके सामने ही मजाक उड़ायी है। आपके प्रति उसके सद्‌भाव का 'तू तो मॉ का भगत है', ऐसा कहकर उपहास किया है।
मेरी सब ज़रूरतें पूरी करने के लिये मैंने उसे सतत दोड़ाया है और उसमें थोड़ी सी भी कमी दिखने पर 'में मायके चली जाऊॅगी' की धमकियाँ भी दी हैं।
अकेले में मैंने उसको रुलाया भी हे।
मुझे बनना था गृहलक्ष्मी, परन्तु बन गयी डायन।
मम्मी! मेरे उन तमाम अपराधों की क्षमा चाहती हॅू।'
महाराज साहेब! मेरे ये शब्द सुनकर मम्मी ने अपनी गोद में मेरा सर रखकर हर्ष के ऑसूओं से मुझे जिस तरह से नहलाया है, उसका वर्णन किन शब्दों में करुॅ?
यही चाहती हूँ कि मेरा मस्तक सदा इसी तरह उपकारियों की गोद में झुका रहे और इसी तरह उपकारियों के अन्तर के आशिष मुझे मिलते ही रहे।

श्रद्धा,



खुला हुआ वीज जिस प्रकार उगने की संभावना खो बेठता है, उसी प्रकार खुले किये गये दोष टिके रहने की संभावना खो बैठते हें। तुमने दोषों को खुला करने का जो सत्त्व दिखाया, इसके लिए तुम्हें लाख-लाख धन्यवाद। शुभेच्छा देता हूँ कि वे दोष पुन. तुम्हारे जीवन में प्रवेश करने की हिम्मत ही न करें। अब पत्रव्यवहार की समाप्ति की बेला में एक महत्त्वपूर्ण बात कह दूँ। सिर्फ दस-पंद्रह व्यक्तियों से बने संयुक्त कुटुंब के प्रति स्नेह रखने से भी इतनी प्रसन्नता का अनुभव हो सकता हो, तो जगत के जीवमात्र के प्रति स्नेह रखने से तो कितनी प्रसन्नता का अनुभव हो सकता होगा, इसकी कल्पना तो करो। यह बात मैं तुम्हे इसलिये लिख रहा हूँ कि उस प्रसन्नता का अनुभव मे अपने संयम जीवन में कर रहा हूँ। खून के रिश्तों से बना स्वजनों का कुटुंब तो मेरे पास भी था, परन्तु अनन्तोपकारी पूज्यपाद गुरुदेवश्री ने स्नेह के रिश्तों से जगत के जीवमात्र को कुटुबीजन बनाने की मुझे मंगल प्रेरणा दी और उन्हीं के आशीवाद से इस मंगल प्रेरणा को सर-ऑखों पर चढाकर मेंने इस मार्ग पर आने के लिये कदम बढाये। इस जीवन में प्रवेश करके आज मुझे करीब ३२ वर्ष हुए हैं। इस जीवन में प्रेम के चढाव-उतार मैंने बहुत देखे हैं। कभी भरपूर प्रसन्नता का अनुभव किया, तो कभी तीव्र उद्विग्नता का भी अनुभव किया है। कभी उपकारी के प्रति भी मन में दुर्भाव रख वैठा, तो कभी वृक्ष के पत्ते के प्रति मन में प्रेम कर बैठा। कभी सवको अपना वनाने के लिये भी तडपा हूँ, तो कभी सवसे दूर जाने का विचार भी कर बेठा हूँ। परन्तु इन सव चढाव-उतार के अनुभवों के वाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि सचमुच जीवन की प्रत्येक पल को स्वर्गमय वनाये रखना है, तो जीवमात्र के प्रति अभी हो सकनेवाला प्रेम अभी कर लेने जेसा है और अभी हो सकनेवाला द्वेष अभी करने जेसा नहीं।

हमारा ऊपरी जीवन अच्छा हो, यही पर्याप्त नहीं,
हमारा आन्तरिक जीवन भी इतना ही अच्छा होना जरूरी है।
अपने आपको बदलना आसान नहीं है, तो हमारे आसपासवालों को बदलना तो बिल्कुल आसान नहीं। यह वास्तविकता सतत नज़र के समक्ष रखने जैसी है। सामनेवाले व्यक्ति के चाहे जैसे गलत बर्ताव पर भी हमें समता टिकाये रखनी है
और साथ ही साथ उसे क्षमा करते रहना है।

अनजाने भी हमारे हृदय में प्रविष्ट हुए किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष के ज़हर को एक पल के लिये भी हमें हृदय में टिकने नहीं देना है और एक पल के लिये भी हमें हृदय को प्रेमशून्य बनने नहीं देना है।

श्रद्धा, मैं दावा तो नहीं करता कि ये सब बातें मेरे जीवन में आज अमल में आ ही चुकी हैं, परन्तु इतना तो ज़रूर कहूँगा कि इस समझ पर अमल करने के लिये मैं गंभीरतापूर्वक प्रयत्नशील तो बन गया हूँ। और इतने प्रमाण में मैं प्रसन्नता की अनुभूति भी कर ही रहा हूँ। इच्छा तो मेरी ऐसी है कि तुम स्वयं भी इस जीवन में प्रवेश करने के लिये गंभीरतापूर्वक विचार करना शुरू कर दो। प्रेम को सिर्फ परिवार तक ही सीमित रखकर सीमित प्रसन्नता का ही अनुभव करने के बदले जगत के जीवमात्र के प्रति अपने प्रेम को फैलाकर असीम बनाकर असीम प्रसन्नता की अनुभूति करने की तीव्र चाह तुम अपने मन में जगा दो। हजारों साध्वीजी भगवंत आज ऐसी प्रसन्नता व मस्ती की अनुभूति कर रहे हैं, तो इसमें तुम्हारा नंबर क्यों नहीं लग सकता? श्रद्धा, मेरे टेबल पर 'संयम मार्ग पर चलने के लिये तत्पर बनी अ.सौ.श्रद्धा के महाभिनिष्क्रमण के प्रसंग पर पधारने के लिये भाव भरा निमंत्रण' ऐसे शीर्षकवाली पत्रिका जल्दी से आये, यही मेरी इच्छा है। इसे तुम सफल करोगी? 'महाराज साहेब! मेरे लिये ऐसे आशीर्वाद देने में आप यदि विलंब न करें, तो मैं भी मेरी दीक्षा की पत्रिका आपको भेजने में विलंब नहीं करूँगी।'

सैकडों हाथों व हजारों
आँखों तक पहुँचनेवाले इस
साहित्य को हमें हजारों हाथों व लाखों आँखों तक
पहुँचाना है, आवश्यकता है आपके औदार्य भरे सहयोग की !

पू. आ. भ. श्रीमद् विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज के वरद हस्तों से लिखे गये साहित्य को लोकमानस की ओर से जो प्रचंड प्रतिसाद मिल रहा है, उससे हमें गौरव की अनुभूति हो रही है।

इस साहित्य को हमें और भी अधिक फैलाना है और इसके द्वारा हमें अनेकों के जीवनदीपक में उत्साह का तेल भरने का मंगल कार्य करना है। यदि इस कार्य में आप सद्भागी बनना चाहते हों, तो हमने एक योजना बनायी है।

रु. ११,००० का दान देकर आप रत्नत्रयी ट्रस्ट में 'श्रुतप्रेरक' के रूप में शामिल हो सकते हैं और रु. ५,००० का दान देकर आप 'श्रुतप्रेमी' बन सकते हैं। सहयोग आपका व उत्साह में वृद्धि हमारी !

(चेक, ड्राफ्ट अथवा रोकडे निम्नलिखित पते पर भेजियेगा।)

रत्नत्रयी ट्रस्ट
कल्पेश वि. शाह
१४, इलोरापार्क सोसायटी,
नारणपुरा चार रस्ता के पास, देरासर के
सामने, नारणपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१३
फोन ७४१७७४६, ७५४०२९७
(दोपहर १२ से ६)

रत्नत्रयी ट्रस्ट
प्रवीणकुमार दोशी
२५८, गांधी गली
स्वदेशी मार्केट
कालबादेवी रोड
मुंबई - ४०० ००२
फोन [illegible]
([illegible])